अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

अक्तूबर 2021

फूलों के विषय में श्रीमाँ के वचन

अग्निशिखा अक्तूबर २०२१ वर्ष ५२, अंक ३, पूर्णांक ६१४

विषय-सूची

(फूलों के विषय में श्रीमाँ के वचन)

प्रार्थना/सम्पादकीय	३
पुष्प हमें सन्देश देते हैं	५
फूलों का रहस्य	११
प्रशान्ति	१७
फूलों के क़िस्से	२०

'पुरोधा':

दैनन्दिनी		४१
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' :		
पहला निर्णायक क़दम उठा लो	नवजात जी	४४
श्रीमाँ के साथ रवीन्द्रजी का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४६
कली खिल उठी	स्व. श्री रवीन्द्रजी	५०
उसकी आवाज़ ही सुन पाता हूँ...	स्व. ज्ञानवती	५२
फूल (कविता)	अज्ञात	५५
सामञ्जस्य की लहर जुड़ गयी	वन्दना	५६
फूल ने मुझसे कहा	अभिनव अग्रवाल	(आवरण ३)

मुखपृष्ठ के चित्र का श्रीमाँ द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ

सामञ्जस्य

आओ, हम प्रयत्न करें कि ऐसा दिवस आये
जब सामञ्जस्य ही साधन तथा लक्ष्य बन जाये।

(प्रचलित अंग्रेज़ी नाम—Coral Vine)
वानस्पतिक नाम : Antigonon Leptopus

प्रार्थना

हे प्रभो, वर दे कि मैं उस अग्नि के जैसी होऊँ जो प्रदीप्त करती, ऊष्मा देती है, पानी के उस सोते की तरह होऊँ जो प्यास हर लेता है, उस पेड़ के जैसी होऊँ जो आश्रय देता और रक्षा करता है।... मनुष्य कितने दुःखी हैं, कितने अज्ञानी हैं, और उन्हें सहायता की कितनी अधिक ज़रूरत है।

तेरे अन्दर मेरा विश्वास, मेरा आन्तरिक निश्चय दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है और दिन-पर-दिन मैं अपने हृदय में तेरे प्रेम को भी अधिकाधिक जीवन्त अनुभव करती हूँ, तेरी ज्योति एक ही साथ अधिक ज्वलन्त और कोमल होती जाती है। मैं तेरे कार्य और अपने जीवन में, अपनी व्यक्तिगत सत्ता और सारी पृथ्वी में भेद करने में अधिकाधिक असफल होती जाती हूँ।

हे स्वामिन्, प्रभो, तेरी 'भव्यता' अनन्त है, तेरा 'सत्य' अद्‌भुत है और तेरा सर्वशक्तिमान् 'प्रेम' जगत् की रक्षा करेगा। **श्रीमाँ**

सम्पादकीय : पुष्प वनस्पति-जगत् की आत्मा हैं और इसीलिए हमेशा से भारत में यही रिवाज रहा है कि आत्म-निवेदन के रूप में हम प्रभु को फूलों का ही चढ़ावा चढ़ाते हैं। आयुर्वेद तथा होम्योपैथी दोनों ही विद्याओं में इनका औषधीय उपयोग भी जगत्-विख्यात है। मानवीय भावनाओं, जैसे प्रेम, विश्वास, विदाई, स्वागत, हर्ष, विजय तथा बहुतेरी दूसरी भावनाओं को प्रकट करने के लिए भी इनका उपयोग पारम्परिक रूप से किया जाता रहा है। अधिकतर फूलों का एक गभीरतर आध्यात्मिक पहलू भी होता है और श्रीमाँ ने उनका आध्यात्मिक अर्थ और प्रतीक देकर हमें उनसे भली-भाँति परिचित कराया है। उदाहरण के तौर पर तुलसी को माँ ने 'भक्ति' नाम दिया है—कितना सटीक नाम!—भक्ति के बिना क्या कोई पूजा सम्पन्न होती है कभी!!

दुःख-दर्द, कष्ट और पीड़ा से बिंधे इस जगत् में पुष्प अपनी बेजोड़, मूक और उदार क्रिया द्वारा एक गभीर प्रेम तथा शान्तिदायक माधुर्य फैलाते हैं। वे ऐसा सतत-उपस्थित सामञ्जस्य अभिव्यक्त करते हैं जो केवल प्रेम के अधिकार में होता है।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से, २५ फरवरी १९६१

पुष्प हमें सन्देश देते हैं

पुष्प बोलते हैं

सवेरे, क़रीब घण्टा-भर मैं अपने स्नानागार में फूल सजाने का काम करती हूँ; सभी फूल वहाँ रखे होते हैं ताकि मैं चुन सकूँ (मैं रोज़ सवेरे फूल बाँटती भी हूँ)। और यह कितना सुन्दर होता है! यह अद्‌भुत होता है। सभी पुष्प बोलते हैं, इस तरह, उनके अन्दर जीवन होता है—वे अनुभव करते हैं। और चूँकि मुझे फूलों से बहुत लगाव है, वे स्पन्दित होते, स्पन्दित होते रहते हैं। और कुछ रात को बन्द हो जाते हैं, मैं उन्हें लेती हूँ, उनकी ओर देखती हूँ, उनसे कहती हूँ—कितने सुन्दर हो तुम—और वे खिल उठते हैं। सचमुच वह दृश्य कितना ख़ुशनुमा होता है। देखो, बस इसे निहारो तुम! (माँ एक गुलाब आगे बढ़ा देती हैं)।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१० जनवरी १९६८*

फूलों से प्रत्युत्तर

... एक व्यक्ति है जिसे मैं फूल भेजती हूँ और वह भी रोज़ाना मुझे फूल भेजा करता है, कोई ऐसा जो बहुत ही गम्भीरतापूर्वक योग कर रहा है। उसने मुझे लिखा (वह मुझे ये सुनहरे जवाकुसुम—"अतिमानसिक सौन्दर्य"—भेजा करता है), उसने मुझे लिखा कि इन फूलों में से एक से उसने कहा, "तुम श्रीमाँ के दर्शन करने जा रहे हो," और पुष्प मुस्कुराया। वह खिल उठा, वह ख़ुश था, और उसने एक स्मित बिखेर दिया। "वह मेरी ओर देख कर मुस्कुराया," उस व्यक्ति ने मुझसे यह कहा था।

मुझे पता नहीं कि यह हमारे बोध का विकास होता है, या फिर सचमुच जैसा कि श्रीअरविन्द कहते हैं, "जब अतिमानसिक 'शक्ति' धरती पर आयेगी तब उसे सभी स्थानों से प्रत्युत्तर मिलेगा।" मुझे लगता है कि ऐसा ही होता है, क्योंकि ये फूल इसी प्रकार के हैं, इतने स्पन्दनशील, जीवन से भरपूर। रोज़ सवेरे मैं उन्हें सजाती हूँ (इसमें मुझे कम-से-कम पौन घण्टा लगता है, सौ से ज़्यादा फूल होते हैं जिन्हें मुझे विभिन्न फूलदानों में सजाना होता है, और हर एक व्यक्ति को मैं विशेष प्रकार का पुष्प देती हूँ—मैं यह सब सोच कर उसी तरह सजाती हूँ), और उन फूलदानों में कुछ फूल

कहते हैं, "मुझे"... लेकिन यह कोई नयी बात नहीं है, क्योंकि जब मैं जापान में थी, मेरे यहाँ एक बड़ा-सा बग़ीचा था और मैं उसके एक हिस्से में सब्ज़ियाँ उगाया करती थी, सवेरे मैं बग़ीचे में सब्ज़ियाँ तोड़ने के लिए जाती तो यहाँ, वहाँ, इधर, उधर *(श्रीमाँ हाथों के इशारे से बतलाती हैं)* से आवाज़ें आतीं, "मुझे! मुझे! मुझे!" इस तरह। और मैं जाकर उन्हीं-उन्हीं को तोड़ती। वे सचमुच मुझे पुकार-पुकार कर बुलाते थे।

इस बात को घटे एक अरसा हुआ, उन्नीस सौ... कब की बात है? यह १९१६-१७ की बात है, तो यह... चालीस साल पहले की बात है।

पचास माँ।

(श्रीमाँ हँसती हैं) पचास साल पहले की!

और अब, सवेरे मुझे बिलकुल सोचना नहीं पड़ता, बस शान्ति से, मैं सीधा फूलों की ओर जाती हूँ, वे कहते हैं, "मुझे! मुझे!..." मैं ख़ुद इस बात पर भौचक्की रह जाती हूँ और मैं कहती हूँ, "अद्‌भुत, ठीक यही मैं चाहती थी!"

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *७ फ़रवरी १९६८*

पुष्प की भाँति बनो

पुष्प की भाँति बनो। व्यक्ति को पुष्प की तरह बनने की कोशिश करनी चाहिये : उद्‌घाटित, स्पष्टवादी, स्थिर, उदार तथा दयालु। जानते हो इसका क्या अर्थ है?

पुष्प अपने समस्त परिवेश के प्रति उद्‌घाटित रहता है : प्रकृति, प्रकाश, सूर्य-किरण, हवा इत्यादि—सबके प्रति। अपने चारों तरफ़ की सभी चीज़ों पर वह एक सुन्दर सहज प्रभाव डालता है। वह आनन्द और सौन्दर्य बिखेरता है।

पुष्प सरल-निष्कपट होता है : उसकी कोई अभिरुचि नहीं होती। बिना किसी होड़ के, प्रत्येक मनुष्य उसके सौन्दर्य और उसकी सुगन्ध का रसास्वादन कर सकता है। उसमें किसी भी तरह का कोई भेद नहीं होता।

पुष्प उदार होता है : बिना किसी रोक या सीमा के वह अपनी रहस्यमयी सुन्दरता तथा अपनी स्वकीय प्राकृतिक सुगन्ध विकीरित करता है। वह हमारे आनन्द के लिए स्वयं को पूरी तरह निछावर कर देता है, यहाँ तक कि इस सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए वह अपने जीवन का तथा अपने अन्दर सञ्चित चीज़ों के गुह्य रहस्य को भी न्योछावर कर देता है।

और पुष्प दयालु होता है : उसके अन्दर कितनी मधुरता होती है, कितना प्यारा होता है, वह हमारे साथ कितना घनिष्ठ होता है और होता है कितना स्नेही। उसकी उपस्थिति हमें ख़ुशी से भर देती है। वह हमेशा प्रसन्नचित्त और प्रफुल्लित होता है।

प्रसन्न है वह जो अपने गुणों की अदला-बदली फूलों के इन सच्चे गुणों से कर सकता है। अपने अन्दर इन संस्कारी गुणों को विकसित करने का प्रयास करो।

—श्रीमाँ

पुष्प पर ध्यान करना

क्या तुम सवेरे-सवेरे किसी बग़ीचे में गये हो? पुष्प सूरज के उदय होने की प्रतीक्षा में उसकी ओर मुँह किये प्रतीक्षा करते हैं। क्या तुमने उस प्रबल अभीप्सा को अनुभव किया है जो इस आने वाले प्रकाश के लिए चारों तरफ़ से उठती है? क्या तुमने पूरी तरह बन्द किसी कली को निहारा है, और यह देखा है कि कैसे एक-एक करके उसकी पंखुड़ियाँ चमत्कारिक रूप से कितनी धीरे-धीरे खुलती हैं? कहाँ से आती है यह शक्ति, यह ऊर्जा, यह धड़कता जीवन?

क्या तुमने बारिश की कुछ बूँदें बरसने के बाद धरती को देखा है? अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए रंग-बिरंगे, छोटे-छोटे हाथों को धरती से निकलते क्या तुमने नहीं देखा? वे हैं Fairy-lilies—Zephyranthes(जिन्हें हम परी-लिली के नाम से भी जानते हैं और जिनका आध्यात्मिक अर्थ श्रीमाँ ने 'प्रार्थना' दिया है)। हम उनमें कृतज्ञता के स्पन्दनों का स्पष्ट रूप से अनुभव कर सकते हैं और 'प्रकृति' के इस सहज और सुन्दर प्रत्युत्तर

को हम हर्षोल्लास के साथ देखते हैं। 'प्रकृति', कितनी ग्रहणशील, 'कृपा' के प्रति कितनी उद्‌घाटित होती है! काश! हम भी इसी तरह के हो पाते।...

और फिर हमें अचरज होता है: वह कौन-सी चीज़ है जो फूलों को और बहुत बार बच्चों को इतनी सुन्दरता, इतनी मधुरता और अपने-आपको दे देने की इतनी सुखद अनुभूति प्रदान करती है? वह है 'भागवत' उपस्थिति जो फूलों में, 'प्रकृति' में बसी हुई है। इसे ही हम 'चैत्य उपस्थिति' और 'प्रेम' कहते हैं। फूलों से प्रेम हमारी अपनी चैत्य सत्ता, हमारे अन्दर स्थित भगवान् को ढूँढ़ने में हमारी सहायता कर सकता है।

—श्रीमाँ

निष्काम, निस्स्वार्थ क्रिया संसार में चैत्य चेतना के सबसे सुन्दर रूपों में से एक है, लेकिन व्यक्ति मानसिक क्रिया-कलाप की सीढ़ी पर जितना ही उठता जाता है, यह क्रिया उतनी ही विरल होती जाती है। क्योंकि बुद्धि के साथ ही आते हैं कौशल और चालाकियाँ, भ्रष्टाचार और हिसाब-किताब। उदाहरण के लिए, जब एक गुलाब खिलता है तो वह सहज रूप में खिलता है, केवल सुन्दर होने के आनन्द के लिए, सुगन्ध देने, जीवन के आनन्द को अभिव्यक्त करने के लिए खिलता है। और वह हिसाब-किताब नहीं करता, उसे इस सबसे कोई लाभ नहीं उठाना होता: वह ऐसा इतने सहज भाव से करता है, होने के, जीने के आनन्द में करता है। मनुष्य को लो, कुछ थोड़े-से अपवादों को छोड़ कर, जैसे ही उसका मन सक्रिय होता है, वह अपनी सुन्दरता और चालाकी से लाभ उठाना चाहता है; वह उससे कुछ प्राप्त करना चाहता है, लोगों की प्रशंसा या इससे कहीं अधिक घिनौनी चीज़ पाना चाहता है। फलतः, चैत्य-दृष्टि से गुलाब मनुष्य से ज़्यादा अच्छा है।

हाँ, यदि तुम सीढ़ी पर और ऊँचे चढ़ो और गुलाब जिस चीज़ को अचेतन अवस्था में करता है, उसी को सचेतन रूप से करो, तो यह बहुत ज़्यादा सुन्दर होगा। लेकिन चीज़ वही होनी चाहिये: बिना हिसाब-किताब के, केवल सत्ता के आनन्द के लिए, सहज रूप में सौन्दर्य का खिलना। यह चीज़ (कभी-कभी, हमेशा नहीं) छोटे बच्चों में होती है। दुर्भाग्यवश, माता-पिता और वातावरण के असर से बच्चे बहुत छोटी अवस्था में ही हिसाब करना, यानी, स्वार्थी होना सीख लेते हैं।

तुम्हारे पास जो है या तुम जो करते हो उसके बदले कुछ लाभ उठाने की इच्छा संसार में सबसे भद्दी चीज़ों में से एक है। और यह सबसे ज़्यादा व्यापक है, यह इतनी व्यापक है कि मनुष्य के अन्दर प्रायः सहज बन गयी है। इस तरह हिसाब-किताब करने और लाभ उठाने की इच्छा से बढ़ कर भागवत प्रेम से पूरी तरह मुँह मोड़ लेने वाली चीज़ और कोई नहीं है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २६६

पुष्प और मनुष्य तथा अभीप्सा की अग्निशिखा

जानते हो, फूल नीरव तथा उदार भंगिमा के साथ बहुत ही गहरा प्रेम और शान्त मधुरिमा फैलाते हैं। इसकी तुलना नहीं की जा सकती। प्रकृति की यही गति दुःख-दर्द से जीर्ण-शीर्ण जगत् में सन्तुलन लाती है। मनुष्य अगर कोशिश करे तो देखेगा कि निश्चित रूप से भौतिक स्तर पर फूल कितना सामञ्जस्य रखते हैं। यही चीज़ विपरीत गति को समाप्त कर धरती पर एक सन्तुलन लाती है और वही सामञ्जस्य और सन्तुलन मानव जीवन को सार्थक बनाते हैं... वास्तव में पुष्प मनुष्य से कहीं अधिक महान् हैं, वे होते हैं छोटे, लेकिन अपने लिए कुछ भी बटोर कर नहीं रखते; बस देते हैं, देते हैं, देते ही चले जाते हैं, उधर आदमी बस लेता है, लेता है, लेता ही चला जाता है! औरों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ना चाहता। मानव अपने अहंकार को ही धुरी बना लेता है, और सबसे बुरी बात यह है कि वह दूसरों से चाहे जितना भी पा ले कभी, कभी सन्तुष्ट नहीं होता।

उसके अन्दर कृतज्ञता की भावना की कमी है। वह सोचता है कि क्रमविकास की सीढ़ी पर वह ऊपर खड़ा है, इसलिए सारी धरती पर उसी का अधिकार है। वाहियात! चूँकि 'प्रकृति' स्वयं को इतने सहज रूप में दे देती है और मनुष्य की इस विपरीत गति को समाप्त कर देती है कि धरती अभी तक जीने-लायक बनी हुई है।

मन के साथ-साथ आयी अधिकार की भावना, 'मैं' की अहंकारिक भावना जो मनुष्य को नीचे, बहुत नीचे खींच ले जाती और उसे तुच्छ और स्वार्थी बना देती है। उसकी शिक्षा, उसकी खोजें, उसकी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, सभी लाभ जो उसकी पहुँच में होते हैं—इन सबने उसे अमीर, आरामदेह, ख़तरों से सुरक्षित रखा है, लेकिन इसी चीज़ ने उसे दम्भी,

अहंकारी और विकृत भी बना डाला। बहरहाल, उसके इतने सारे अन्वेषणों ने उसे मानव के सच्चे अर्थ में मानव नहीं बनाया। कितनी दरिद्र है मनुष्य की यह अवस्था! भगवान् ने ऐसा कभी नहीं चाहा होगा! इतना विकृत है वह कि औरों को धोखा देने में मज़ा लेता है, इस बात की उसे जानकारी तक नहीं होती, क्योंकि वह ख़ुद को ही धोखा देता रहता है। कितनी दयनीय है मनुष्य की अवस्था! अपनी इन तुच्छ गतियों से ऊपर उठना कब सीखेगा वह?

Throb of Nature, पृ. १४३-४४

हमें अचञ्चल और शान्त रहना चाहिये और हमारे अन्दर अभीप्सा की अग्नि हमेशा चौकन्नी और सीधी ऊपर ही की ओर उठती रहनी चाहिये। यह वही अभीप्सा है जो एक तलवार की भाँति है जो हृदय से ऊपर उठती हुई, निरन्तर ऊपर ही ऊपर उठती रहती है। अग्निशिखा-रूपी यह तलवार आगा-पीछा नहीं करती: अपने पथ पर आने वाली सभी बाधाओं को यह निर्मूल कर, सीधी उठती है, हमेशा ऊँचाइयों की ओर इसकी दृष्टि रहती है और जब हम अपनी चैत्य सत्ता के साथ अपना सन्तुलन बिठा लेते हैं—वह चैत्य सत्ता ही है वस्तुतः यह अग्निशिखा—तब सौन्दर्य के ख़ज़ाने हमारे सम्मुख खुल जाते हैं तथा आध्यात्मिक चमत्कारों की गंगा बहने लगती है।

लेकिन इसके लिए व्यक्ति को निरन्तर रूप से सारे समय इस अग्निशिखा को पाने की अभीप्सा कर सकनी चाहिये, दिन-रात, रात-दिन इसके प्रति सचेतन और सजग बने रहना चाहिये।

इस अग्निशिखा में निवास करो जो सबको काञ्चन बना देती है, पारस है यह जो लौह को स्वर्ण में रूपान्तरित कर देती है।

व्यक्ति को इसी के लिए अभीप्सा करनी चाहिये।

Throb of Nature, पृ. ५६

मोना सरकार

माँ के द्वारा दिये गये फूलों की सुगन्ध प्रायः असाधारण होती है।

फूल बहुत ग्रहणशील होते हैं। और जब उनसे प्यार किया जाये तो वे ख़ुश होते हैं।

१५ दिसम्बर १९६७

—श्रीमाँ

फूलों का रहस्य

फूलों में प्रेम

क्या फूल प्रेम करते हैं?

यह उनके प्रेम का रूप है, इस तरह खिलना। निश्चय ही, जब तुम किसी गुलाब को सूर्य की ओर खिलते देखो तो उसमें अपना सौन्दर्य देने की ललक देखोगे। लेकिन हमारे लिए इसे समझना लगभग असम्भव है, क्योंकि वे जो करते हैं उसके बारे में सोचते नहीं। मनुष्य जो कुछ भी करता है उसमें हमेशा अपने-आपको करते हुए देखने की क्षमता जोड़ देता है, यानी, अपने बारे में सोचता है, यह सोचता है कि वह यह काम कर रहा है। व्यक्ति जानता है कि वह कुछ कर रहा है। जानवर नहीं सोचते। यह प्रेम का वही समान रूप बिलकुल नहीं है। कहा जा सकता है कि फूल सचेतन नहीं होते: यह एक सहज क्रिया होती है, यानी, अपने बारे में सचेतन चेतना नहीं, बिलकुल नहीं। लेकिन इस सबके द्वारा एक महान् 'शक्ति' काम करती है—महान् वैश्व 'चेतना' और वैश्व प्रेम की महान् 'शक्ति' जो सभी चीज़ों को सौन्दर्य में प्रस्फुटित करती है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २६७

सौन्दर्य-बोध

क्या फूलों में सौन्दर्य-बोध होता है?

जैसे ही सचेतन जीवन शुरू होता है; प्राण-तत्त्व वहाँ आ जाता है, और यह प्राण-तत्त्व ही वह चीज़ है जो फूलों को सौन्दर्य का बोध प्रदान करता है। परन्तु यह शायद उस अर्थ में व्यक्तिभावापन्न नहीं है जिस अर्थ में हम इसे समझते हैं, बल्कि यह प्रजाति का बोध है और प्रजाति सर्वदा उसे अनुभव करने की चेष्टा करती है। मैंने चैत्य उपस्थिति और प्रकम्पन के प्रथम मूलरूप को वानस्पतिक जीवन में देखा है, और वास्तव में जिस प्रस्फुटन को हम फूल कहते हैं वह चैत्य उपस्थिति का प्रथम प्राकट्य होता है। चैत्य केवल मनुष्य में व्यक्तिभावापन्न होता है, पर वह मनुष्य से पहले

भी विद्यमान था; परन्तु यह उसी प्रकार की व्यक्तिभावापन्न अवस्था नहीं है जैसी कि मनुष्य में होती है, यह कहीं अधिक तरल होती है : यह एक शक्ति के, चेतना के रूप में प्रकट होती है, न कि किसी व्यक्तित्व के रूप में। उदाहरण के लिए, गुलाब को ले लो; इसके रूप, रंग, सुगन्ध की महान् पूर्णता एक प्रकार की अभीप्सा तथा चैत्य आत्मदान को प्रकट करती है। सूर्य का प्रथम स्पर्श पाने पर सुबह के समय गुलाब को खिलते हुए देखो, वह अभीप्सा के रूप में अपूर्व आत्मदान की प्रतिमूर्ति होता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १९६-९७

पुष्प तथा चैत्य

फूलों में चैत्य प्रार्थना क्या होती है जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं?

जब पुष्प के रूप में चैत्य किसी पौधे में अभिव्यक्त होता है तो वह मूक प्रार्थना होती है, वह भगवान् की ओर पौधे का उत्साह-भरा उठान होता है।

आपने लिखा है : "फूलों के लिए प्रेम चैत्य को पाने और उसके साथ एक होने में बहुत मूल्यवान् सहायता है।" क्या आप इसे कुछ विस्तार से समझा सकती हैं?

चूँकि वानस्पतिक जगत् में पुष्प चैत्य की अभिव्यक्ति हैं इसलिए पुष्पों के लिए प्रेम का होना इस बात का संकेत होगा कि व्यक्ति चैत्य-स्पन्दन के द्वारा आकर्षित है और यह कि वह अपने अन्दर के चैत्य के प्रति भी आकर्षित है।

जब तुम चैत्य-स्पन्दन के प्रति ग्रहणशील होते हो तो यह चीज़ तुम्हारे अपने अन्दर के चैत्य के प्रति भी तुम्हें घनिष्ठतर सम्पर्क में ले आती है। सम्भवतः फूलों का सौन्दर्य भी प्रकृति का एक ऐसा ही साधन है जिसका उपयोग वह मनुष्यों को चैत्य के प्रति जगाने के लिए करती है।

फूलों के द्वारा व्यक्ति चैत्य सम्पर्क कैसे साध सकता है?

जब व्यक्ति अपने चैत्य के प्रति सचेतन सम्पर्क में होता है तो वह सम्पूर्ण सृष्टि के पीछे स्थित एक निर्वैयक्तिक चैत्य के प्रति भी अभिज्ञ हो जाता है, व्यक्ति फूलों के साथ सम्पर्क जोड़ कर उस चैत्य प्रार्थना को जान सकता है जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं।

एक शिष्य के साथ बातचीत से

माँ, जब फूल आपके पास लाये जाते हैं तो आप उन्हें किस तरह अर्थ प्रदान करती हैं?

फूलों को? यह भी उसी तरह से। फूल की प्रकृति के साथ, उसके आन्तरिक सत्य के साथ सम्पर्क स्थापित करके। तब यह मालूम हो जाता है कि वह किसका प्रतीक है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २५५

प्रत्येक पुष्प का अपना विशिष्ट अर्थ होता है, होता है न?

ठीक वैसा नहीं जैसा कि हम इसे मन से समझते हैं। जब कोई किसी पुष्प को कोई सुनिश्चित अर्थ प्रदान करता है तब उसके मन से एक भावना निर्गत होती है। पुष्प इस भावना को उत्तर दे सकता है, इस भावना के स्पर्श से स्पन्दित हो सकता तथा अर्थ को स्वीकार कर सकता है, परन्तु पुष्प में मानसिक चेतना से मिलती-जुलती कोई चीज़ नहीं होती। वानस्पतिक जगत् में चैत्य का प्रारम्भ हो जाता है, लेकिन वहाँ मानसिक चेतना का प्रारम्भ नहीं होता। पशुओं में बात दूसरी होती है; वहाँ मानसिक जीवन रूप लेना आरम्भ कर देता है और उनके लिए वस्तुओं का एक अर्थ होता है। परन्तु पुष्पों में एक छोटे शिशु की गतिविधि-जैसी कोई चीज़ होती है —यह न तो संवेदन और न अनुभूति ही होती है, बल्कि इसमें दोनों की कुछ चीज़ें होती हैं; यह सहजात गति होती है, बहुत विशिष्ट स्पन्दन होता है। अतएव, कोई यदि उसके सम्पर्क में हो, यदि कोई उसका अनुभव करे तो उस पर एक ऐसी छाप पड़ती है जिसे एक विचार के द्वारा रूपान्तरित किया जा सकता है। बस, इसी तरह मैंने फूलों और पेड़-पौधों को अर्थ

प्रदान किया है—स्पन्दन के साथ एक प्रकार का तादात्म्य होता है, जिस गुण का वह प्रतिनिधित्व करता है उसका बोध प्राप्त होता है और, धीरे-धीरे, एक प्रकार के सामीप्य के द्वारा (कभी-कभी यह अचानक आता है, कभी-कभी इसमें समय लगता है), ये स्पन्दन (जो प्राणिक-भावात्मक श्रेणी के होते हैं) पास-पास आ जाते हैं और मानसिक विचार का स्पन्दन भी आ जाता है, और, यदि उस समय पर्याप्त समस्वरता हो तो मनुष्य प्रत्यक्ष रूप में यह देख लेता है कि पौधे का क्या अर्थ है।

कुछ देशों में (विशेषकर यहाँ) कुछ विशेष पौधे पूजन-अर्चन और भक्ति के माध्यम के रूप में व्यवहृत होते हैं। कुछ पौधे विशिष्ट अवसरों पर प्रदान किये जाते हैं। और मैंने यह बहुधा देखा है कि यह तादात्म्य पौधे के स्वभाव से बिलकुल सामञ्जस्य रखता था, कारण स्वाभाविक रूप में, बिना कुछ जाने, मैंने वे ही अर्थ प्रदान किये जो धार्मिक उत्सवों में दिये गये थे। वास्तव में स्वयं फूल में ही स्पन्दन विद्यमान था...। क्या उसका जो व्यवहार किया गया था उस व्यवहार के कारण वह स्पन्दन आया था अथवा वह बहुत दूर से, अति गहराई से, चैत्य जीवन के प्रारम्भ से आया था? यह कहना कठिन है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १९७-९८

फूलों का चढ़ावा चढ़ाना

समाधि के फूलों के बारे में मेरा प्रश्न है कि क्या श्रीअरविन्द उनके द्वारा कोई विशेष सन्देश प्रदान करते हैं? वैसे उनका आध्यात्मिक अर्थ तो होता ही है।

मैं नहीं सोचती—यह बात अलग-अलग मामलों पर निर्भर होगी। वास्तव में तो अगर लोग कोई प्रार्थना उन पुष्पों के द्वारा भेजें तो वे उन सन्देशों तथा प्रार्थनाओं को प्राप्त करेंगे। यह बहुत सम्भव है। यह हो सकता है कि अगर लोग किसी यथार्थ अभिप्राय या किसी यथार्थ प्रार्थना को किसी पुष्प में चढ़ावे के रूप में रखें तो श्रीअरविन्द उसे पाकर उसका उत्तर दे दें, और अगर व्यक्ति पर्याप्त रूप से संवेदनशील हो तो वह उसे ग्रहण भी कर सकता है।

फूलों का हमारा चढ़ावा अगर हमारी चेतना की अवस्था पर निर्भर करता है तो क्या यह उनके प्रतीकात्मक अर्थ को सीखने में भी हमारी मदद करता है, भले शुरुआत में यह पूरी तरह से मानसिक प्रक्रिया क्यों न हो?

हाँ, निश्चित रूप से।

गुह्य जगत् में भी क्या फूलों में शक्ति होती है?

हाँ, उनके अन्दर गुह्य शक्ति होती है; और अगर व्यक्ति यह जानता हो कि उनके साथ कैसे एकात्म हो सके तो वे उसे कोई सन्देश भी प्रदान कर सकते हैं।

आपने फूलों के जो अर्थ दिये हैं उससे अलग भी वे सन्देश प्रदान कर सकते हैं क्या?

असम्भव नहीं है, लेकिन वह व्यक्ति जो सन्देश भेजता है उसके अन्दर उस सन्देश को रूप देने की महान् शक्ति होनी चाहिये।

क्या रूप देने की शक्ति पूरी तरह से गुह्य होती है या फिर रूप देने की कोई मानसिक अथवा प्राणिक शक्ति भी सन्देश सञ्चारित कर सकती है?

रूप देने की मानसिक शक्ति आसानी से सन्देश सञ्चारित कर सकती है। लेकिन इन सन्देशों को ग्रहण करने और इनका अर्थ समझने के लिए उस व्यक्ति को भी स्वयं मानसिक रूप से बहुत अधिक ग्रहणशील और विशेष रूप से सतर्क होना होगा जिसके पास ये भेजे जा रहे हों।

जब हम फूलों का चढ़ावा चढ़ाते हैं तो हमें कैसी मनोवृत्ति रखनी चाहिये? उनके प्रतीकात्मक अर्थ न जानने से कोई फ़र्क पड़ता

है क्या?

यह पूरी तरह से अर्पण करने वाले और चेतना की उसकी अवस्था पर निर्भर करता है। यही समान उत्तर दोनों प्रश्नों के लिए दिया जा सकता है। लोगों के कार्य करने की चेतना के स्तर के अनुसार ही अर्थ की गभीरता को नापा जा सकता है।

एक शिष्य के साथ बातचीत से

क्या फूल हमेशा शक्ति को बनाये रखते हैं, तब भी जब वे सड़ जायें?

सड़ जायें? नहीं, मेरे बच्चे; सूख जाने पर, हाँ। जो फूल सड़ जाते हैं उनका कुछ मूल्य नहीं रहता। एक प्रकार का विघटन होता है, इसलिए वह चीज़ चली जाती है। शायद उससे पृथ्वी को शक्ति मिलती हो, यह बिलकुल सम्भव है; लेकिन फिर भी जब वे सड़ जायें तो खाद बनाने के काम के रह जाते हैं जिससे और फूल उग सकें। लेकिन अगर फूल सूख जाये, तो वह सुरक्षित रहता है, और काफ़ी लम्बे समय तक रहता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. २६३

मधुर माँ, आप हमें हर रोज़ जो फूल देती हैं उनका क्या करना चाहिये?

फूल? जब तक वे ताज़ा रहें तब तक उन्हें रखो, और जब वे ताज़ा न रहें, तो उन्हें इकट्ठा करके माली को दे दो (अपने परिचित किसी भी माली को दे सकते हो), ताकि वह और फूल उत्पन्न करने के लिए उन्हें भूमि में डाल दे। हाँ, भूमि हमें जो देती है वह उसे लौटाना चाहिये, वरना वह अनुपजाऊ बन जायेगी।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. २६३-६४

प्रशान्ति

... अगर कोई अपने मन में, अपने प्राण में, अपने भौतिक में, यानी, अपने सारे शरीर में—मांसपेशियों, ऊतकों तथा कोषाणुओं तक में निश्चल-नीरवता स्थापित कर सके तो शुद्धि का कार्य शुरू हो जाता है, जो सारे शरीर में एक शान्ति, पूर्ण प्रशान्ति ले आती है।

यह प्रशान्ति स्वयं को ज्योति और हर्ष के मिश्रण के साथ प्रकट करती है, मानों कोई बाधा ही न हो, और तब सब कुछ विशाल, सीमातीत, शरीरातीत बन जाता है—तुम मानों अपने शरीर के घेरे से निकल जाते हो—उस प्रशान्ति के साथ एक हो जाते हो जो ऊपर से उतरती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोषाणु विस्तृत हो रहे हैं, शरीर पूर्ण समता में पनप रहा है। तब सचमुच शान्ति हमारे अन्दर प्रतिष्ठित होती है।

इस शान्ति, इस निश्चल-नीरवता के प्रति खुलो और अपने अन्दर गहराई में एकाग्र होओ ताकि तुम उसका प्रभाव अनुभव कर सको। यह शान्ति तुम्हारी सत्ता के सभी भागों में फैल जाये, वे उसे आत्मसात् कर लें। जब धरती पर शान्ति उतरती है तो इसका अर्थ है कि 'सत्य' का अवतरण हुआ है, और तब सब कुछ आनन्दमय, उत्सवपूर्ण और शुद्ध रूप से दिव्य बन जाता है, मानों नवजन्म हुआ हो। और जब हम इस शान्ति में नहा लेते हैं तो निरन्तर हमारा नवजन्म होता रहता है।

और यह उदात्त उपस्थिति, जो धरती के वातावरण में निरन्तर कार्यरत है, इसका भव्य प्रभाव सर्वदा उपस्थित रहता है। इसकी उपस्थिति को अनुभव करने की कोशिश करो और भौतिक रूप से उसे अपने अन्दर आत्मसात् करो। यह प्रगति करने और स्वयं को शुद्ध करने का अच्छा तरीक़ा है।

शान्ति... शान्ति... जब तुम्हारी सत्ता में शान्ति स्वयं को प्रतिष्ठित कर ले तो वह एक ऐसी 'उपस्थिति' होती है जो सभी अपूर्णताओं को, उन सभी चीज़ों को तितर-बितर कर देती है जो तुम्हें बेचैन बनाते, तुम्हें उत्तेजित करते और तुम्हारी आन्तरिक अचञ्चलता में खलल डालते हैं। अन्तर्मुख होना इतनी ठोस अवस्था है कि कोई भी बाहरी घटना उसे छू तक नहीं पाती।

Throb of Nature पृ. १४०-४१ — मोना सरकार

मनुष्य की अपेक्षा एक फूल में मैं चेतना की किसी अवस्था को अधिक सुगमता से सञ्चारित कर सकती हूँ : वह अत्यन्त ग्रहणशील है, चाहे अपने अनुभव को अपने प्रति रूपायित करना वह नहीं जानता क्योंकि उसमें मन नहीं है। परन्तु शुद्ध आन्तरात्मिक चेतना प्राप्त करना उसके लिए सहज-स्वाभाविक है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १४७

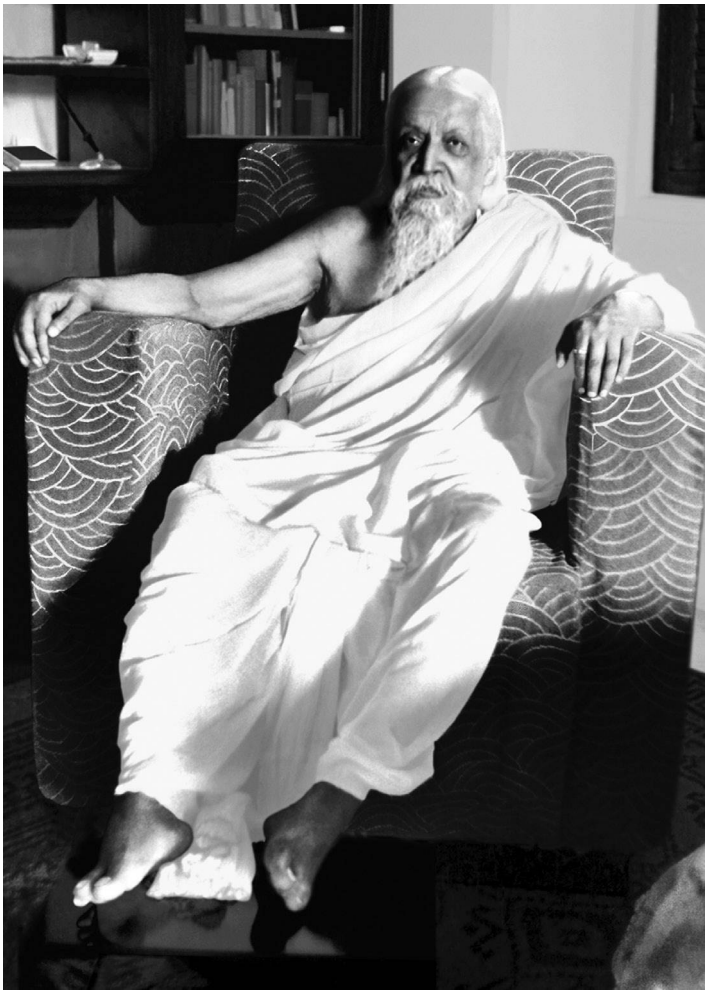

आपकी अनुकम्पा के प्रतीक का पुष्प इतना नाज़ुक क्यों होता है और वह इतनी जल्दी मुरझा क्यों जाता है?

नहीं, अपने प्रतीकात्मक अर्थ में अनुकम्पा कभी नहीं मुरझाती—पुष्प उन चीज़ों का क्षणिक प्रतिनिधित्व करते हैं जो स्वयं उनके अन्दर शाश्वत होती हैं। CWSA खण्ड ३५, पृ. ४४५ —श्रीअरविन्द

फूलों के क़िस्से

चेरी के फूल

एक गहरी एकाग्रता ने मुझे जकड़ लिया और मैंने देखा कि मैं एक चेरी के फूल के साथ अपने-आपको तदात्म कर रही थी और उसके द्वारा चेरी के सभी फूलों के साथ, और जैसे-जैसे मैं चेतना की गहराई में एक नीलाभ शक्ति-धारा के पीछे-पीछे उतरती गयी, मैं अपने-आप अचानक चेरी का वह वृक्ष बन गयी जो पूजा के फूलों से लदी हुई अपनी असंख्य शाखाओं को अनेक बाहुओं की तरह आकाश की ओर फैला रहा था। तब मैंने स्पष्ट रूप में यह वाक्य सुना :

"तूने अपने-आपको चेरी के पेड़ों की आत्मा के साथ एक कर लिया है ताकि तू भली-भाँति देख सके कि स्वयं भगवान् ही स्वर्ग के प्रति इस पुष्पमयी प्रार्थना की भेंट चढ़ा रहे हैं।"

जब मैंने यह लिखा तो सब कुछ मिट गया; लेकिन अब उस चेरी के पेड़ का रक्त मेरी रगों में बह रहा है और उसके साथ बह रही है अतुलनीय शक्ति और शान्ति। मनुष्य-शरीर और वृक्ष-शरीर में क्या अन्तर है? सचमुच कोई अन्तर नहीं : जो चेतना इन दोनों को अनुप्राणित करती है वह अभिन्न रूप से एक ही है।

तब चेरी के वृक्ष ने मेरे कानों में फुसफुसा कर कहा :

"वसन्त के रोगों का इलाज चेरी के फूलों में है।"

७ अप्रैल १९१७ **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १, पृ. २०५-२०६

अतिमानसिक सूर्य

(श्रीमाँ शिष्य को कदम्ब का पुष्प देती हैं जिसे उन्होंने 'अतिमानसिक सूर्य' नाम दिया है : गेंद के आकार में असंख्य समूहबद्ध पुंकेसरों से युक्त)

यह सुन्दर है, है न? यह एक साथ है, लेकिन असंख्य है। यह सभी दिशाओं में जाती हुई एक ही चीज़ है। और क्या रंग है! वृक्ष गरिमामय है।

प्रकृति एक अद्‌भुत अन्वेषक है—वह जो कुछ करती है सुन्दर होता है। मुझे नहीं लगता कि मनुष्य किसी इतनी सम्पूर्ण वस्तु की रचना करने में सफल हुआ है। यह सच है कि बाद में, उसने कुछ नयी जातियों की रचना की है, लेकिन फिर भी, प्रकृति अभी भी उद्‌गम या मूल स्रोत है।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१७ फ़रवरी १९६०*

तुलसी

एक बार कोई व्यक्ति मुझे बिना कुछ बताये मेरे लिए तुलसी की एक छोटी-सी टहनी ले आया। मैंने उसे सूँघा और कहा : 'ओह! भक्ति!' वह पूर्णतया... भक्ति का एक स्पन्दन था। और बाद में, किसी ने मुझे बताया कि वह कृष्ण के प्रति भक्ति का पौधा है, यह कृष्ण के प्रति समर्पित है।

तपस्या का फूल (धतूरा)

और एक बार, कोई व्यक्ति मेरे लिए उन बड़े-बड़े फूलों में से एक ले आया (वास्तव में वे पुष्प नहीं हैं), वह फूल कुछ-कुछ भुट्टे से मिलता है और उसके बड़े-बड़े वृन्तों में तेज़ गन्ध होती है; उसे मेरे लिए कोई ले आया, मैंने उसे सूँघ कर कहा : 'ओह! तापसिक पवित्रता!'—ऐसा मैंने मात्र गन्ध के आधार पर कहा था। और बाद में किसी ने मुझे बतलाया कि वह शिव का उस काल का पुष्प था जब वे अपनी तपस्या कर रहे थे।

इन लोगों के पास युगों से सञ्चित ज्ञान है। वह प्राचीन वैदिक ज्ञान

है जिसे उन लोगों ने सुरक्षित रख छोड़ा है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह कोई ऐसी वस्तु है जो भौतिक रूप में सच है : यह मन, विचार, यहाँ तक कि भावनाओं तक पर भी निर्भर नहीं करती—यह एक स्पन्दन है।...

यह शिव है। हाँ, यह पुष्प तपस्यारत शिव है।

और फिर जो अत्यन्त रुचिकर बात है वह यह है कि साँप विलक्षण ढंग से इस गन्ध (शिव-पुष्प की सुगन्ध) के प्रति आकर्षित होते हैं : इस गन्ध के कारण, इसकी झाड़ियों में निवास करने के लिए बहुत दूर से चले आते हैं। और तुम जानते हो कि सर्प क्रमविकास की शक्ति है, यह शिव का अपना प्राणी है : वे इन्हें सदा अपने सिर के ऊपर और गले में लपेटे रहते हैं क्योंकि वे विकास और रूपान्तरण की शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। सर्पों को यह फूल प्रिय है; यह प्रायः नदी के किनारे उगता है और जहाँ भी इन पौधों का झुण्ड मिलेगा, तुम्हें उस स्थान पर सर्पों के आवास सदा मिलेंगे, तुम्हें निश्चित रूप से सर्प मिलेंगे।

मैं इसे अत्यन्त मज़ेदार पाती हूँ, क्योंकि हमने यह निर्णय नहीं लिया कि उसे इस प्रकार होना चाहिये : ये प्रकृति में विद्यमान सचेतन स्पन्दन हैं। सुगन्ध, वर्ण, रूप—ये सभी एक सच्ची गति की सहज अभिव्यक्ति-मात्र हैं।

सरलता : ज़ुकाम का इलाज

देखो, मैं तुम्हारे लिए दो फूल लायी हूँ। इनमें दो विभिन्न प्रकार की विशिष्ट भारतीय सुगन्धें हैं। इनमें से यह है 'आर्जव' (इसे अंग्रेज़ी में 'टॉर्च ट्री' के नाम से जाना जाता है) और यह है 'सरलता' (हिमनेनथरम : छोटे गुलबहार की तरह एक अत्यन्त लघु पीत पुष्प, जिसे तिपतिया के नाम से भी जाना जाता है)। मैंने यह देखा है कि इसमें *(श्रीमाँ 'सरलता' को हाथ में लेती हैं)* एक निर्मलकारक सुगन्ध है। जब तुम उसे सूँघते हो, ओह! हर चीज़ स्वच्छ, निर्मल हो जाती है, यह आश्चर्यजनक है! *(श्रीमाँ उस फूल को सूँघती हैं)* एक बार, शुरू होते हुए ज़ुकाम से मैंने अपने-आपको इसके द्वारा ठीक किया था—एकदम आरम्भ में, जैसे ही तुम इसे पकड़ते हो, यह काम किया जा सकता है। यह तुम्हें पूर्णतया भर देता है : तुम्हारी नाक, तुम्हारा गला...

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से ४ *फ़रवरी* १९६१

सहिष्णुता

ओह! उस दिन मेरे पास जीनिआ के कुछ फूल थे ('सहिष्णुता'), शाब्दिक रूप में एक कलाकृति, मानों प्रत्येक पंखुड़ी को चित्रित किया गया था। समग्र रूप में वे कितने सुसंगत थे और साथ ही कितने वैविध्यपूर्ण! ओह, प्रशंसनीय है यह प्रकृति...। निस्सन्देह, आख़िरकार हम लोग नक़्क़ाल और अनाड़ी-मात्र हैं!

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१८ फ़रवरी १९६१*

अमरता

लो, तुम्हारे लिए एक पूरा प्रवचन ले आयी हूँ! *(श्रीमाँ 'स' को कुछ फूल देती हैं)* सर्वप्रथम, वेदों का लक्ष्य: 'अमरत्व' (बैंगनी अमरान्त)। यही उनका लक्ष्य था: अमरत्व की ओर ले जाने वाला सत्य। यही उनकी महत्त्वाकांक्षा थी: अमरत्व। मेरे ख़याल से यह भौतिक अमरत्व नहीं था —लेकिन मैं निश्चित नहीं हूँ क्योंकि वे पितृगणों के सम्बन्ध में तो कहते ही हैं, और पितृगण वेदों और साथ-ही-साथ कबाला के पूर्व की एक परम्परा से सम्बन्धित हैं; और वहाँ, उन लोगों ने पृथ्वी पर अमरत्व के सम्बन्ध में कहा है: रूपान्तरित पृथ्वी—श्रीअरविन्द का विचार। तो यद्यपि इसे उन्होंने खुल कर नहीं कहा है, शायद वे जानते थे।

भगवान् के साथ मैत्री

(श्रीमाँ कुछ और फूल देती हैं) यह व्यक्तिगत पक्ष की ओर अधिक है: 'भगवान् के साथ मैत्री' (कैना इण्डिका, एक छोटा लाल फूल), भगवान् के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध—तुम एक दूसरे को समझते हो, तुम्हें एक दूसरे से भय नहीं होता, तुम लोग अच्छे मित्र हो!

विश्व पर शासन करने वाला दिव्य प्रेम

और यह चमत्कार है! *(श्रीमाँ 'विश्व पर शासन करने वाले दिव्य प्रेम' नामक पुष्प—ब्राउनिया कोक्किनिया—प्रदान करती हैं)* कितनी सामर्थ्य है! यह सहृदय है, उदार है और संकीर्णताओं, क्षुद्रताओं, सीमाओं से रहित है—जब वह आयेगा।...

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *७ मार्च १९६१*

एक दिव्य गुलदस्ता

देखो, यह 'कृपा' (गुड़हल) है। यह 'सन्तुलन' (बैगोनिया) है। (कितना मनोहर !) यह 'तमसरहित प्रकाश' (सफ़ेद लिली) है। और यह 'पवित्रता' (सफ़ेद जूही) है : एक 'समग्र संपरिवर्तन' (नरगिस के वर्ग का फूल), *(इस फूल के केन्द्र में श्रीमाँ ने दो और फूलों को रख दिया, वे हैं :* 'सेवा' (पीला गुलमोहर) और 'श्रीअरविन्द की करुणा' (जीनिया)—श्रीअरविन्द और उनकी करुणा-सहित समग्र परिवर्तन, उनकी करुणा जो हमें उनकी सेवा करने का अवसर प्रदान करती है।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से
२५ अप्रैल १९६१

सुगन्धों का आनन्द

सुगन्ध-सम्बन्धी अनुभव मुझे पहले हो चुका था : सुगन्धों के बीच दिव्य स्पन्दन, आनन्द का स्पन्दन। तुम्हें पता ही है कि डॉ. 'न' का रसोईघर मेरी खिड़की के ठीक नीचे है : वह बच्चों का भोजन बनवाने के लिए सुबह और दोपहर का समय वहीं बिताता है; वह सब ऊपर चढ़ता है, हवा के झोंकों के साथ ऊपर आ पहुँचता है। और जब समाधि-वृक्ष पुष्पित होता है, तो फूलों की सुगन्ध हवा के झोकों के साथ आती रहती है; जब लोग नीचे अगरबत्ती जलाते हैं तो उसकी सुगन्ध हवा के झोंकों के साथ ऊपर पहुँच जाती है—प्रत्येक, यानी हर एक सुगन्ध ('सुगन्धें'—चलो हम उन्हें गन्ध कह लें)। और वह प्रायः उस समय आने लगती है जब मैं जप के लिए चलती हूँ : यह गन्धों का आनन्द है, हर गन्ध अपने अर्थ, अपनी अभिव्यक्ति, अपनी... (कैसे व्यक्त करूँ?) अपनी प्रेरक-प्रवृत्ति और अपने लक्ष्य के साथ उठती है। अद्‌भुत! और अब सुगन्ध या दुर्गन्ध की बात नहीं रही, उस धारणा का अस्तित्व अब एकदम नहीं रहा : प्रत्येक का अपना अर्थ है—अपना अर्थ और प्रयोजन तथा अस्तित्व। मैं एक लम्बे अरसे से इस बात का अनुभव कर रही हूँ।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१९ मई १९६१*

और यह शीर्षस्थ उपलब्धि—(भागवत प्रेम)—अनार

स्वस्थ करने की भौतिक शक्ति

(माँ 'स' को "Material power of healing" (नीलमणि लता) नामक पुष्प प्रदान करती हैं।)

मैं चाहती हूँ कि स्वस्थ करने की यह भौतिक शक्ति स्थायी रूप से प्रतिष्ठित हो जाये। जब कोई मुझसे कहता है, "यहाँ मेरे दर्द है", मैं अपना हाथ इस तरह उस पर फिराती हूँ और बस सब ठीक हो जाता है।

हाथ अनुभव करते हैं, वे अनुभव करते हैं कि यह सम्भव है। वे 'चरम स्पन्दन' के प्रति इतने सचेतन हैं—वे यह अनुभव करते हैं कि सब कुछ सम्भव है। उस रोज़, 'क' गिर गयी थी, न मालूम कैसे, और उसके घुटने में लगी थी, उसे काफ़ी चोटें और खरोंचें आयी थीं। और वह ऐसी पोशाक पहने थी जो यहाँ तक *(घुटनों के ऊपर)* ही थी! मैंने देखा और पूछा, "क्या हुआ?" वह बोली, "मैं गिर गयी।" तब यह हाथ *(माँ का सीधा हाथ)* एकदम सहज-स्वाभाविक रूप से, इस तरह उसके घुटने के ऊपर, उसे सहला कर गुज़रा, और मैंने अपनी उँगलियों के सिरों पर समस्त स्पन्दनों को महसूस किया: सूई की तरह थे वे—प्रकाश की सूइयाँ—और वे स्पन्दित हो रहे थे, स्पन्दित हो रहे थे, स्पन्दित हो रहे थे। तो मैंने अपना हाथ उसके घुटने पर रखा और अचानक वह बोल उठी, "ओह!..." वह हक्की-बक्की रह गयी थी: उसका सारा दर्द एकदम से छूमन्तर हो गया था।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१३ अप्रैल १९६६*

कृपा

(श्रीमाँ 'स' को "कृपा" (Grace) नामक फूल देती हैं, फिर दूसरा "कृपा" पुष्प देती हैं।

क्या तुम दूसरी 'कृपा' भी चाहोगे?... ओह, इसका कभी भी आधिक्य नहीं होता! ओह, अभी उस दिन किसी ने मुझसे २४ नवम्बर के दर्शन के सन्देश के बारे में पूछा, और श्रीअरविन्द ने मुझे उत्तर दिया था। वह कितना रुचिकर था! मैंने अचानक कुछ देखा। जब वे बोल रहे थे तो जो घटा वह सचमुच अद्‌भुत था। मैंने 'करुणा' और 'कृपा' को देखा, "विधान" को देखा और यह भी देखा कि 'करुणा' किस प्रकार सब पर—बिना किसी

भेदभाव और बिना किसी शर्त के—सभी व्यक्तियों पर और सभी चीज़ों पर क्रिया करती है और किस भाँति वह 'परम करुणा' उन्हें उस अवस्था में ले आती है जिसमें वे भागवत 'कृपा' को ग्रहण कर सकते हैं।

मुझे यह अद्‌भुत प्रतीत हुआ।

मुझे यह अनुभूति हुई : मैंने इस 'परम करुणा' को संसार के मायाजाल में क्रिया करते देखा और अनुभव किया, और यह देखा कि किस तरह 'परम कृपा' सर्वशक्तिशालिनी है, अर्थात्, उसके सामने संसार का "विधान" बाधा के रूप में कभी नहीं ठहर सकता। मैंने इस 'करुणा' को सबका स्पर्श करते देखा और देखा कि वह 'परम करुणा' प्रत्येक को उसका अवसर प्रदान कर रही थी; तब मेरी समझ में आया कि श्रीअरविन्द के इस कथन से "वह प्रत्येक को उसका अवसर प्रदान करती है" उनका क्या आशय था—अर्थात् वह 'करुणा', वह 'कृपा' बिना किसी भेदभाव के, बिना किसी शर्त, बिना किसी पसन्द, नापसन्द के, **सभी को** समान अवसर देती है। अतः, इस 'करुणा' का परिणाम होता है कि वह धरतीवासियों को 'परम कृपा' के बारे में जाग्रत् कर देती है ताकि वे ठोस रूप से यह अनुभव कर सकें कि संसार में 'भागवत कृपा' के जैसी वस्तु उपस्थित है। और जो कोई उसकी अभीप्सा करे, उस पर विश्वास रखे, 'कृपा' तुरन्त उस पर क्रिया करती है—वैसे तो वह संसार में सारे समय क्रियारत रहती है, लेकिन श्रद्धा के साथ वह पूरी तरह से प्रभावकारी बन जाती है।

यह सब इतना स्पष्ट, इतना यथार्थ था! यह एक नयी अनुभूति, एक अन्तर्दर्शन की तरह था। और स्वयं श्रीअरविन्द इस 'परम करुणा' की साक्षात् अभिव्यक्ति थे... वह उनकी आँखों में देखी जा सकती थी, निस्सन्देह, उनकी आँखें 'करुणा' से भरपूर थीं। उस अन्तर्दर्शन में मैंने जाना कि सचमुच यह 'परम करुणा' क्या है...

उन्होंने कहीं और भी लिखा है : "यह बहुत ही विरल है कि 'भागवत कृपा' किसी से मुँह फेर ले, लेकिन कई उससे मुँह मोड़ लेते हैं—मनुष्य 'भागवत कृपा' से मुँह मोड़ लेते हैं।" मुझे ठीक-ठीक उनके शब्द याद नहीं हैं, लेकिन मुझे लगता है कि उन्होंने 'विकृत' शब्द का प्रयोग किया था। यह अनुभव भी एकदम जीवन्त था कि 'कृपा' मनुष्यों का साथ नहीं छोड़ रही, एकदम नहीं (वह कृपा तो हमेशा सक्रिय होती है), लेकिन मनुष्य टेढ़े-मेढ़े,

विकृत होते हैं...

... मनुष्य हमेशा स्वयं अपने ऊपर ही झुका रहता है। यानी वह अपनी शक्ति और क्रिया में सीधा आगे ही आगे की ओर बढ़ने की जगह, अपने ही अहं के चारों ओर कुण्डली मारे रहता है, हर तरह के अलवेटों और मरोड़ों में फँसा रहता है और इससे उसके चारों तरफ़ के स्पन्दन भी विकारयुक्त हो जाते हैं; मानव स्वयं ही टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता चुनता है (टेढ़ा-मेढ़ा, विकृति—ये ही शब्द मेरे मस्तिष्क में आ रहे हैं)। सीधा होने की जगह मनुष्य विकृत है। और अगर वह अपने विकार के कारण 'परम कृपा' को अपने अन्दर प्रवेश ही नहीं करने दे तो भला 'कृपा' क्या करे!! वह प्रभावकारी कैसे हो सकती है भला?

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *७ दिसम्बर १९६६*

गुलाब

आज सवेरे गुलाबों के साथ मुझे एक मज़ेदार अनुभव हुआ। गुलाब की एक बड़ी सी कली थी—बड़ी और सख़्त, लाल रंग की थी, मैंने उसे पकड़ा, मैं उसे निहारती रही, फिर मैंने उसे अपनी उँगलियों से ऐसे सहलाया, और... *(फूल के खिलने की मुद्रा)*, और एक पंखुड़ी, दूसरी, फिर एक और—और एक-एक करके, एक के बाद एक पंखुड़ी मेरी आँखों के सामने खुलने लगी... और वह थी एकदम बन्द और एकदम सख़्त कली। जब मैंने उसे हाथ में लिया था तो मेरे मुँह से बरबस निकल पड़ा था, "कितनी दुःखद बात है।" और उसे सहला कर मैं उसे पानी में वापस रखने ही वाली थी ताकि वह खिल सके, और लो, यहाँ तो मेरे देखते-न-देखते, वह खिल उठी... ओह, कितना मनमोहक दृश्य था वह, जानते हो, वह कली धीमे-धीमे

खुली, ख़ुश थी वह, मानों कह रही हो, "वाह, कितनी प्रसन्न हूँ मैं!"

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि मेरे साथ फूलों की बड़ी बढ़िया मैत्री है।

एक बार बहुत पहले, मैंने कुम्हलाये फूल हाथ में लिये—मुरझाये फूल (यह तब की बात है जब मैं तेओं के साथ गुह्यवाद का अभ्यास किया करती थी—ऐसा बहुत बार घटित हुआ)। एक पुष्प एकदम लटक रहा था: मैंने उसे हाथों में लिया, उसकी ओर देखा, और धीमे-धीमे, थोड़ा-थोड़ा करके वह फिर से सीधा हो गया और तुरन्त मानों मुस्कुराने लगा!

वे बहुत, बहुत ग्रहणशील होते हैं।...

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१५ मार्च १९६७*

बहुत बढ़िया होगा अगर हम लोगों की चेतना को उसी तरह हाथ में ले पाते जैसे फूलों को लेते हैं, और जैसे हम पुष्प को देखते हैं, उसे पकड़ते हैं और वह स्पन्दन, परम प्रेम का वह 'चरम स्पन्दन' पाते ही पुष्प कैसे खिल उठता है, वैसे ही अगर चेतना खिल कर व्यवस्थित हो जाये, अद्‌भुत रूप से विकसित हो उठे!

बहुत सुखद और सुन्दर होगी यह क्रिया अगर हम इसे कर सकें—*(हँसी)* शायद कोई ऐसा कर सके!

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१५ मार्च १९६७*

गुलाबी कमल की कली

कुछ रोज़ पहले, दोपहर को मैंने 'क्ष' को एक ऐसा कमल दिया *(माँ गुलाबी कमल की एक कली दिखाती हैं)* वह बस ज़रा-सा खुला था। वह सारी रात उसे हाथ में पकड़े-पकड़े सोयी। अगली सुबह उसने उसे पानी में रख दिया... कली खिल गयी! सारी रात उसके हाथ में रहने के बावजूद...। यह सुचरित्रता का लक्षण है!

पुष्प लोगों की प्राणिक ऊर्जा के प्रति बहुत ग्रहणशील होते हैं—उनकी प्राण-ऊर्जा के गुण के प्रति। कुछ लोगों के हाथ में जाते ही फूल तुरन्त मुरझा जाते हैं; कुछ के हाथ में वे खिल उठते हैं। मैंने ख़ुद कई बार देखा है कि श्रीअरविन्द ने आधा कुम्हलाया हुआ पुष्प उठाया और वह ताज़ा हो

गया—वह एकदम प्रसन्न हो गया!

और मैं पैरिस की एक महिला को जानती थी (जो मेरी शिष्या होने का दावा करती थी), वह जब कभी मुझसे मिलने आती, फूल ज़रूर लाती, और हमेशा, बिना अपवाद के, फूल एकदम लटके हुए होते। वह आकर मुझसे कहती, "लेकिन जब मैं लायी तब ये एकदम ताज़ा थे!" *(माँ हँसती हैं)* वे एकदम से ख़तम हो जाते थे। तो अन्ततः एक दिन मैंने उससे कहा, "ऐसा इसलिए होता है क्योंकि तुम उनका सारा जीवन अपने अन्दर निचोड़ लेती हो!"

वह उनका जीवन हर लेती थी।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *२९ अप्रैल १९६७*

प्रकाश के प्रति उद्घाटित

('स' माँ को कई जवाकुसुम देती है)

जब प्रकाश जलता है (यहाँ एक ट्यूब लाइट है, चमकदार ट्यूब), तब फूल नहीं मुरझाते। जब तुम उन फूलों को प्रकाश के नीचे रखते हो तो वे ताज़ा बने रहते हैं। मैंने तो कुछ अधखिले फूलों को भी खिलते देखा है। उन्हें वह प्रकाश पसन्द है। दोपहर को मैं कुछ फूलों को पानी-भरी प्याली में रखती हूँ (जब वे काफ़ी बन्द होते हैं), और दो-चार को मैं प्रकाश के नीचे रखती हूँ—और वे खुल जाते हैं!

उनके अन्दर एक संवेदनशीलता होती है जिससे हम अज्ञात हैं।

कभी-कभी सवेरे, मेरे पास गुलाब की एक कली होती है, फिर मैं उसे पानी से ऐसे निकालती हूँ *(पुष्प को चारों तरफ़ सहलाने की क्रिया)*, उसे मैं छूती नहीं हूँ, ऊपर ही ऊपर यह क्रिया करती हूँ... और वह खुल जाता है!

और लोग कहते हैं कि पुष्प सचेतन नहीं होते!

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *२५ अक्तूबर १९६७*

रूपान्तर

तुम जानते हो मैं हमेशा 'रूपान्तर' का एक फूल—*आकाश नीम, जिसका अंग्रेज़ी प्रचलित नाम 'इण्डियन कॉर्क ट्री' है*—यहाँ लगाती हूँ *(माँ*

अपने बटन के काज की ओर इशारा करती हैं); मैं सारी सुबह उसे रखती हूँ और जब दोपहर को नहाने जाती हूँ तब उसे निकालती हूँ, स्वभावतः फूल कुम्हला जाता है, तो मैं उसे खाद के डिब्बे में डाल देती हूँ। लेकिन एक दिन 'स' ने मेरे लिए एक बोतल में कुछ गुलाब भेजे थे, वह गिलास मेरे स्नानागार की मेज़ पर था; उस दिन मैंने 'रूपान्तर' का वह पुष्प पानी के उस गिलास में डाल दिया, और जब मैं नहा कर आयी तो देखा कि वह तो अद्‌भुत दीख रहा था, सवेरे जब मुझे वह मिला था उससे कहीं ज़्यादा ताज़ा और तन्दुरुस्त लग रहा था वह! मैंने रात भर, अगले दिन भी उसे वहीं रख छोड़ा, वह तो जैसा का वैसा ही बना रहा! एकदम ताज़ा रहा वह। 'रूपान्तर' के फूल के साथ ही मैंने 'स' का गिलास वापस भेजा, और जब वह दोपहर को मुझसे मिलने आया तो मैंने उससे पूछा, "क्या तुम्हें 'रूपान्तर' का वह फूल मिला? देखो यह हुआ था... और मैंने उसे सारी कहानी सुनायी।" अगले दिन उसने मुझे लिखा:

"रूपान्तर बहुत अधिक अभीप्सा, समर्पण तथा ग्रहणशीलता की माँग नहीं करता क्या?"

मैंने उत्तर दिया:

"रूपान्तर पूर्ण और सम्पूर्ण समर्पण की माँग करता है। लेकिन प्रत्येक सच्चे-निष्कपट साधक की क्या यही अभीप्सा नहीं होती?

" 'पूर्ण' यानी... (मैंने सोचा कि वह अचरज करेगा कि मैंने 'पूर्ण' और 'सम्पूर्ण' दोनों शब्द क्यों लिखे जब दोनों का अर्थ समान ही है)। अतः, मैंने उसे इस तरह समझाया:

" 'पूर्ण' यानी सत्ता की भौतिकतम से लेकर सूक्ष्मतम अवस्थाओं का सीधी रेखा में समर्पण। 'सम्पूर्ण' यानी सत्ता की विभिन्न अवस्थाओं का —बहुत बार वे एकदम से विरोधी भाग भी होते हैं, जो सत्ता के बाहरी भौतिक, प्राणिक और मानसिक भाग को रचते हैं—उन सबका विस्तार में, चारों दिशाओं में समर्पण। इसे हम 'सर्वांगीण' समर्पण कह सकते हैं।"

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से ६ *दिसम्बर १९६७*

चार रूपान्तर

देखो, ये रहे 'रूपान्तर'। *(माँ 'म' को एक के बाद एक, 'रूपान्तर' —आकाश नीम—के चार पुष्प देती हैं।)*

यह मानसिक रूपान्तर के लिए है; यह प्राणिक; यह भौतिक; और यह, चैत्य रूपान्तर के लिए।

यह है सारा कार्यक्रम—अपनी सत्ता के विभिन्न भागों का रूपान्तर।

जानते हो, मैं केवल एक ही प्रयास से सन्तुष्ट नहीं होती कि 'शान्ति' को सारे समुदाय में उतारा जाये या यह भी नहीं कि भगवान् को उपलब्ध किया जाये। उच्चतर चेतना के द्वारा अपनी चेतना को परिवर्तित करना भी पर्याप्त नहीं है। वस्तुतः होना चाहिये सत्ता के प्रत्येक भाग का मूलभूत और आमूल रूपान्तर।

सत्ता के भागों को बदलना पर्याप्त नहीं है। मैं मात्र एक बदलाव नहीं चाहती। मैं चाहती हूँ सम्पूर्ण रूपान्तर, इससे कम कुछ नहीं—मैं चाहती हूँ कि 'नयी चेतना'—'अतिमानसिक चेतना' को सत्ता में, शरीर में सब जगह उतारा जाये, ताकि शरीर का प्रत्येक अंग रूपान्तरित हो जाये।

मैं यही चाहती हूँ, इस सब का रूपान्तरण *(माँ शरीर की ओर इशारा करती हैं)।*

Throb of Nature, पृ. ८० मोना सरकार

अभीप्सा की बारिश

(माँ 'अभीप्सा' (पारिजात) के पुष्प बारिश की तरह छिड़कती हैं)

आज बारिश है, 'अभीप्सा' के फूलों की बारिश, यह झरता है, झरता है, झरता है ताकि तुम अपनी झोली में जितनी चाहो, अभीप्सा बटोर लो। तुम्हें अपने-आपको ऊपर की ओर खोलना सीखना चाहिये ताकि ये अभीप्साएँ ऊपर उठें, अन्दर गहरी उतरें और वहाँ ज्योति सुलगायें। तब ये सारी अभीप्साएँ सीधी मेरे पास आयेंगी। यह शान्ति की बौछार-सरीखी हैं ताकि तुम और अधिक अभीप्सा करो। तुम्हारे अन्दर जितनी ज़्यादा अभीप्सा होगी तुम उतने ज़्यादा शुद्ध और पवित्र बनते जाओगे और तुम्हारे अन्दर शान्ति अधिकाधिक बसती जायेगी।

तो चलो, अब 'अभीप्सा' के इन सभी फूलों को बटोर लो।...

या हम दूसरी तरह से यह भी यह कह सकते हैं : जो शुद्ध होता है वह कहीं अधिक अभीप्सा करता है।

'अभीप्सा' के ये इतने सारे फूल—पवित्रता का कितना बड़ा कार्य।

Throb of Nature, पृ. ६३ मोना सरकार

प्रभु का सतत स्मरण

(माँ 'म' को 'प्रभु का सतत स्मरण'—जापानी मधुमालती—पुष्प प्रदान करती हैं)

यह मात्र स्मरण नहीं बल्कि प्रभु के द्वारा सतत जीना और प्रभु में सतत जीना है। हमेशा प्रभु की निकटता का अनुभव करना है। विचार में, संकल्प में और क्रिया में प्रभु के साथ एक होना है। प्रभु द्वारा सुझाये पथ पर चलना है, जहाँ कोई चीज़ विरोध नहीं करती। अटल मनोभाव के साथ व्यक्ति को अपनी चेतना को विस्तृत करना चाहिये ताकि वह 'भागवत चेतना' के साथ एक हो सके। यह कोई मानसिक चीज़ नहीं है, बल्कि यह है वह संवेदन, वह मनोभाव जिसे जीवन में तुम अपनी क्रियाओं द्वारा उन सर्वव्यापी प्रभु के प्रति धारण करते हो जो सबको सँभाले हुए हैं। उन्हें ढूँढ़ लो, तब तुम्हें किसी भी चीज़ के बारे में परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं।

(माँ फूल सूँघती हैं फिर मेरे आगे हाथ बढ़ा कर मुझे सुँघाती हैं।)

यह मनमोहक है, सुगन्धमय है, है न?

जी माँ।

यह मधुर है और साथ ही बहुत सूक्ष्म भी। अगर तुम बहुत धीरे से, लम्बी साँस के साथ इसकी ख़ुशबू लो तो यह न केवल अपनी सूक्ष्म सुगन्ध से तुम्हारा हृदय भर देता है बल्कि सारे शरीर के द्वारा भागवत मधुरता के इस अद्वितीय संवेदन को चारों ओर फैला भी देता है, मानों स्वयं शरीर फैल रहा है, और तुम उस वातावरण में अपने-आपको तैरता अनुभव करते हो।

कोशिश करो और मुझे बतलाओ। संवेदन के तौर पर यह अद्वितीय

है। यह सत्ता के सभी भागों को नहला देता है। व्यक्ति शुद्ध बन जाता है, कामनारहित, अपने संवेदनों में पवित्र, अपनी चेतना की विचार-शृंखला में पवित्र। यह मानों किसी उपस्थिति की साँस को अपने अन्दर भरना है। यह... कैसे कहूँ... अद्‌भुत रूप से मधुर और प्रशान्तिदायक होता है।

तो मेरे बच्चे, इसकी सराहना करने के लिए तुम्हें इसका अनुभव करना होगा।

Throb of Nature, पृ. १४५-४६ मोना सरकार

स्पष्ट मन

(माँ 'स्पष्ट मन'—हरा चम्पा—पुष्प 'म' को देती हैं)

यह (स्पष्ट मन का यह पुष्प) स्पष्ट विचारों के लिए है। यानी, व्यक्ति को स्पष्ट रूप से, व्यवस्थित तरीक़े से सोचना सीखना चाहिये, अपने विचारों को सही क्रम में, अच्छी तरह सजाना, सूत्रबद्ध करना सीखना चाहिये, उन्हें भली-भाँति समझना और हमेशा युक्तियुक्त तरीक़े से अभिव्यक्त करना सीखना चाहिये ताकि वह पूर्ण समझ विकसित कर सके। यहाँ *(सिर की ओर इशारा करके)* सभी चीज़ों का घालमेल रहता है, यहाँ चीज़ें सुस्पष्ट नहीं होतीं, लगता है यहाँ हमेशा गड्डमड्डता बनी रहती है, अफ़रा-तफ़री मची रहती है। व्यक्ति को अपनी विचार-शक्ति को विकसित करना चाहिये —जैसे वह अपनी मांसपेशियों को मज़बूत बनाता है—ताकि वह यहाँ-वहाँ टटोलने की बजाय एकदम ठीक-ठीक, स्पष्ट और एककेन्द्रित होकर सोच सके या अपने-आपको अभिव्यक्त करने के लिए आवारा विचारों के साथ मारा-मारा न फिरे।

जानते हो, व्यवस्थित तरीक़े से सोचने और स्वयं को स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करने के लिए व्यक्ति को अपने मन को शान्त रखना चाहिये। समवृत्ति के साथ एक के बाद एक कार्य करते रहना चाहिये और जो कुछ अभिव्यक्त करना हो उसे तर्कपूर्ण रीति से विकसित करना चाहिये। व्यक्ति को ज्ञान विकसित करना और श्रीअरविन्द की पुस्तकें पढ़नी चाहियें ताकि वह अपने विचारों में स्पष्टता प्रस्फुटित कर सके। तुम्हारा विचार स्पष्ट, निर्मल और पवित्र होना चाहिये ताकि तुम जो कुछ अभिव्यक्त करना चाहो

वह पाठकों के लिए सुस्पष्ट और पारदर्शक बन सके। तुम्हारे मन में जो कुछ है, तुम्हारे भाव और संवेदन एक चलचित्र की भाँति सामने वाले के सम्मुख गुज़रते चले जाने चाहियें, तुम्हारे विचारों में अधिक स्पष्टता होनी चाहिये। अभी तुम्हारे विचार कुछ धुँधले से, अव्यवस्थित हैं; तर्कपूर्ण और व्यवस्थित रीति से समझाने के लिए मन को साफ़ और प्रकाशित होना चाहिये, अपने अन्दर के विचार को तुम्हें शृंखलाबद्ध तरीक़े से विकसित करना चाहिये ताकि तुम सही परिणाम पर पहुँच सको।

उसके बाद तुम मन की दूसरी क्षमताओं का भी विकास कर सकते हो। मन को उन्नत करने, उसे लचीला बनाने, अधिक अच्छी तरह एक ही बार में पूर्णता के साथ समझने, समन्वय और आत्मसात् करने के इस कार्य को सम्पन्न करने के बाद तुम्हें अपने-आपको निश्चल-नीरवता में ढालना आना चाहिये ताकि तुम अधिक उच्च और अधिक गभीर चीज़ों पर ध्यान लगा सको। तब आती हैं वे अवस्थाएँ कि तुम अचानक मन के उस पार निकल जाते हो और प्रबोधन की ज्योति में आपादमस्तक स्नान करते हो, या अन्तःप्रेरणा की एक किरण तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर जाती है और तुम्हें सौन्दर्य के, महानता के और विस्तार के प्रदेशों में उठा ले जाती है—यह है नूतन जीवन का प्रारम्भ। कोशिश करो और तुम साधारण रीति से सोचने और आनन्दप्रद स्वर्गों पर चिन्तन-मनन करने के बीच के भेद को जान पाओगे। वह अक्षय आनन्दोल्लास का स्रोत है।

इसी की ओर अपने संकल्प को मोड़ दो, इसी को अपनी समस्त एकाग्रता का लक्ष्य बनाये रखो और इसी चेतना में खिलो।

पवित्रता

(श्रीमाँ 'पवित्रता'
(सफ़ेद जूही) का फूल सूँघती हैं।)

ओह, 'पवित्रता'... कितनी मीठी है इसकी सुगन्ध!

'भागवत उपस्थिति' की पवित्रता—तुम्हें पता है, यह एक तरह का संवेदन होता है, ऐसा संवेदन जिसे उसकी निकटता, उसके प्रभाव और

निश्चित रूप से उसके सम्पर्क द्वारा अनुभव किया जा सकता है। और यह सबसे अधिक प्रभावी तब होता है जब तुम पवित्र हो : अपने विचारों में पवित्र, अपनी भावनाओं में, क्रियाओं में, अपनी कामनाओं में, अपनी

अभीप्साओं में पवित्र, यहाँ तक कि तुम्हारे ज्ञान में भी पवित्रता हो, तुम्हारी आदतों में शुद्धता हो—समग्रता में पवित्रता। तुम्हारी सत्ता का प्रत्येक भाग शुद्ध और साफ़ हो, जिसमें अन्धकार की कोई झलक, परछाईं का कोई धब्बा न हो, वह हो बिल्लौर-जैसा, जिसके आर-पार विकृत हुए बिना प्रकाश पहुँच जाये।

तुम्हारे अन्दर होनी चाहिये पवित्रता की वह पारस-मणि जिसके सम्पर्क में आने से सभी कुछ शुद्ध हो जाये। इसके लिए तुम्हें अपने अन्तर में वह प्रकाश पाना होगा जो तुम्हारे अन्दर गहरे बसता है और जिसमें सब कुछ को खरा सोना बनाने की क्षमता है। तुम्हें अपने अन्दर का वह हिस्सा बाहर की ओर खुला रखना चाहिये जो पवित्र करने वाला प्रकाश फैलाये; तब, उदाहरण के लिए, कोई मामूली विचार, कोई भी कामना, कोई अन्धकारमय चीज़ या कोई ऐसा आवेश जिसे दबाना बहुत मुश्किल हो, उसे तुम उस प्रकाश के सामने कर दो, जैसे ही शुद्ध करने वाला वह प्रकाश उसे छूकर उस विचार, उस कामना या आवेश के अन्दर गहरे प्रवेश कर जायेगा वैसे ही वह उसे तुरन्त रूपान्तरित कर देगा, उसे पवित्र तथा उदात्त बना देगा। ऐसा सचमुच होता है, वास्तव में हर एक चीज़ अपने सारतत्त्व में पवित्रता की इस चिनगारी को लिये रहती है।

तब स्वयं शरीर, वह तत्त्व जिससे वह बना है, पवित्र, प्रदीप्त और पारदर्शक हो जाता है, अपने प्रभाव से, अपने सम्पर्क से वह अपनी शुद्धता चारों ओर बिखेरता है। शरीर में तुम्हें इसी शुद्धता और पवित्रता को उतारना

है, सत्ता में इसी को प्रतिष्ठित करना है, ताकि वह तुम्हारे स्वभाव को, तुम्हारी मनोवृत्ति को और तुम्हारी इन्द्रियों को प्रकाश के साँचे में ढाल सके।

प्रार्थना करो कि तुम्हारी सभी गतियों में, सभी क्रियाओं में और सभी विचारों में यह पवित्रता अभिव्यक्त होकर अपना ठप्पा लगा दे। पवित्र... अपनी पवित्रता में पवित्र, तब मिथ्यात्व या अन्धकार की एक हलकी-सी झलक तक नहीं बची रहती। जब व्यक्ति पूरी तरह से शुद्ध हो जाता है तब वह सच्चा-सरल, स्पष्टवादी और ऋजु बन जाता है, उसके अन्दर भय का नामोनिशान नहीं रहता क्योंकि तब न उसके अन्दर कोई मरोड़ रहती है न ही कोई प्रतिक्रियाएँ।

हाँ, पवित्र होने का अर्थ है मुक्त होना, सभी बाधाओं से मुक्त, सभी पेचीदगियों से मुक्त, सभी दुःख-दर्द और कष्टों से मुक्त, सभी द्वन्द्वों से मुक्त।

हाँ, श्रेष्ठ स्वतन्त्रता में साँस लेने के लिए शुद्ध बनो, पवित्र बनो।

पवित्र होना 'भगवान्' होना है।

ऐसा हो कि यह भागवत पवित्रता तुम्हारे अन्दर शुद्धता की बाढ़ ले आये, आनन्दविभोर तुम, अपने जीवन में चमक उठो। ऐसा हो कि यह स्वयं को पूर्ण प्रेम में, पूर्ण समझ के ज्ञान में प्रकट करे और जीवन में सौन्दर्य और सामञ्जस्य में अभिव्यक्त हो—हीरे की तरह शुद्ध जो अन्दर से अपना प्रकाश बिखेरता है, उस विचार की तरह शुद्ध जो प्रदीप्त करता है, अपने शरीर के तत्त्व में शुद्ध ताकि वह रूपान्तरकारी प्रकाश को अपने अन्दर धारण कर सके। एक ऐसी पवित्र और चरम अवस्था में रहो जो भव्य उपस्थिति के रहस्य उजागर करती है। तुम्हें यही बनने की अभीप्सा करनी चाहिये। तो अब... पूरे जीवन का कार्य है यह। आसान नहीं है, लेकिन करने की तकलीफ़ उठाने-लायक ज़रूर है।

Throb of Nature, पृ. १६०-६१, १६२-६३ — मोना सरकार

भागवत कृपा

तुम मेरे लिए *'भागवत कृपा'*
(*स्थूल पद्म*—Cotton rose) लाये हो।

(कुछ छेड़ने के स्वर में) लेकिन, क्यों? तुम्हें अब भी 'कृपा' की आवश्यकता

है? तुम्हारे पास काफ़ी नहीं है? वैसे तुम क्या चाहते हो? ... क्या कोई तकलीफ़ है, कुछ ठीक नहीं चल रहा है क्या?

माँ, 'भागवत कृपा' को माँगने की कोई सीमा है क्या? मुझे तो नहीं लगता।

एक दृष्टिकोण से शायद नहीं। यह निर्भर करता है। लेकिन तुम अपने परिवेश के बारे में सचेतन नहीं हो, उस 'कृपा' के बारे में जो तुम सब पर सतत बरसती रहती है। 'भागवत कृपा' में तुम नहाते हो, उससे आप्लावित रहते हो, यहाँ तक *(सिर की ओर इशारा)* उसमें डूबे रहते हो। तुम्हें इसका कोई अनुमान ही नहीं कि यह क्या है, यह अद्‌भुत वस्तु, यह कृपा जो तुम सबको चारों ओर से घेरे रहती है, तुम्हारी सुरक्षा-कवच बनी रहती है, और तुम्हें ऊर्जा से भर देती है, तुम्हें निरन्तर थामे रहती है, और जानते हो, दया और करुणा के अपने पंख पसार कर यह उसके नीचे तुम्हें आश्रय देती है, दुबका लेती है कि तुम्हें अपने डैनों की सुखद छाया में समेट कर तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करती रहे, रात-दिन तुम्हें अपने आशीर्वाद की बौछारों से नहलाती रहे। अद्‌भुत है यह! अद्वितीय!!...

कितनी सुखद 'भागवत कृपा' तुम सबको घेरे रहती और तुम्हें अपनी बौछारों से नहलाती रहती है!

अधिक ग्रहणशील बनने के लिए नम्र बनो और प्रभु की 'उपस्थिति' का निरन्तर अनुभव करो।

Throb of Nature, पृ. ३० — मोना सरकार

eukoKkfud i.krk

केवल एक ही मनोवैज्ञानिक पूर्णता नहीं है बल्कि फूल की पंखुड़ियों की तरह पाँच पूर्णताएँ हैं।

वे हैं सच्चाई, श्रद्धा, भक्ति, अभीप्सा और समर्पण।

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

वानस्पतिक नामः Plumeria obtusa

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

अक्तूबर

१. पूरी तरह से भौतिक रूप में सभी चीज़ों से अलग-थलग हो जाना कभी-कदास ही लाभप्रद होता है; परन्तु मुख्य चीज़ है, आन्तरिक अनासक्ति और पूरी तरह भगवान् की ओर मुड़ना।

२. जीव अपनी सभी कामनाओं और दुःख-कष्टों के समय भगवती माँ के पास जाता है, और भगवती माँ चाहती हैं कि ऐसा ही हो ताकि वे अपने हृदय का सारा प्रेम उस पर उँडेल सकें।

३. एकमात्र वही जीवन जीने-योग्य है जो भगवान् के साथ एकात्मता के लिए निवेदित हो।

४. यह कहने की ज़रूरत नहीं कि जो सत्य के लिए अभीप्सा करते हैं उन्हें असत्य बोलने से बचना चाहिये।

५. हृदय के पीछे विद्यमान एक परदा और मन के ऊपर पड़ा हुआ एक ढक्कन हमें भगवान् से विच्छिन्न करते हैं। प्रेम और भक्ति से परदा फट जाता है और मन के निस्तब्ध हो जाने पर घिस जाता और विलीन हो जाता है। (श्रीअरविन्द)

६. प्रकृति के प्रति प्रेम साधारणतः आधुनिक संस्कृति से अदूषित, निर्मल और स्वस्थ सत्ता का चिह्न है। शान्त मन की नीरवता में ही प्रकृति के साथ सबसे अच्छा सम्पर्क साधा जा सकता है।

७. जो लोग भगवत्कृपा और सहायता के लिए अभीप्सा करते हैं उनके लिए कृपा और सहायता हमेशा प्रस्तुत रहती हैं। अगर उन्हें श्रद्धा और विश्वास के साथ लिया जाये तो उनकी शक्ति असीम है।

८. अगर हम अपने मुख या क़लम से असत्य को प्रकट होने देते हैं, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, तो हम सत्य के पूर्ण सन्देशवाहक बनने की आशा कैसे कर सकते हैं?

९. सच्चे बनो, हमेशा सच्चे बनो, अधिकाधिक सच्चे बनो।

१०. सच्चाई हर एक से यह माँग करती है कि वह अपने विचारों, अपने भावों, अपनी अनुभूतियों और अपने कार्यों में अपनी सत्ता के केन्द्रीय

सत्य के सिवा और कुछ न प्रकट करे।

११. यह कभी न भूलो कि तुम अकेले नहीं हो। भगवान् तुम्हारे साथ हैं और तुम्हारी सहायता एवं पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं।

१२. भगवान् ऐसे साथी हैं जो कभी साथ नहीं छोड़ते, ऐसे मित्र हैं जिनका प्रेम आश्वासन और बल प्रदान करता है। श्रद्धा बनाये रखो और वे तुम्हारे लिए सब कुछ कर देंगे।

१३. एक नियम मैं तुम्हारे लिए निश्चित कर सकता हूँ—ऐसा कोई काम मत करो, ऐसी कोई बात मत कहो या सोचो जिसे तुम माताजी से छिपाना चाहो। (श्रीअरविन्द)

१४. बस एक ही बात है, लगे रहो और डटे रहो—जब तक कि प्रकाश का समय नहीं आ जाता। (श्रीअरविन्द)

१५. हे भगवान् के सैनिक और वीर योद्धा! भला तेरे लिए शोक, लज्जा या दुःख-कष्ट कहाँ? तेरा जीवन तो एक गौरव की वस्तु है, तेरे कर्म हैं आत्म-निवेदन, विजय है तेरा देवत्वलाभ, पराजय है तेरी सफलता। (श्रीअरविन्द)

१६. हमें आवश्यकता है शान्त हृदय, सुदृढ़ संकल्प और पूर्ण आत्म-त्याग की, अपनी दृष्टि को निरन्तर परे की ओर निबद्ध रखने की, ताकि हम ऐसे समय भी, जो वास्तव में विश्वव्यापी विघटन का काल है, निरुत्साहित न हों। (श्रीअरविन्द)

१७. मनुष्य को कठिनाई की अपेक्षा कहीं अधिक आग्रही होना होगा—और कोई उपाय नहीं है।

१८. भगवान् को प्राप्त करने के अन्तरात्मा के अटूट संकल्प के आगे कोई चीज़ टिक नहीं सकती। (श्रीअरविन्द)

१९. सारी संकीर्णता को दूर हटा दो और मानव-एकता की चेतना में जागो। शान्ति और समस्वरता पाने का एकमात्र यही तरीक़ा है।

२०. दिव्य और अनन्त माँ के प्रति आत्म-समर्पण करना, चाहे वह कितना ही कठिन क्यों न हो, हमारे लिए एकमात्र फलदायी साधन और हमारा एकमात्र स्थायी आश्रय है।

२१. माँ के प्रति आत्म-समर्पण करने का यह अर्थ है कि हमारी प्रकृति उनके हाथों का यन्त्र और हमारी अन्तरात्मा उनकी गोद का बालक

बन जाये।

२२. किसी चीज़ के लिए इच्छा न करो। हर क्षण अपनी शक्यता के अनुसार ऊँचे-से-ऊँचे स्तर पर रहो।

२३. यद्यपि अन्धकार घना है—और यह जगत् तथा साथ ही मनुष्य की भौतिक प्रकृति भी उससे भरी हुई है—फिर भी सच्ची ज्योति की एक किरण अन्त में दसगुने अन्धकार को पराजित कर सकती है। इस बात पर विश्वास करो और इसे हमेशा दृढ़तापूर्वक पकड़े रहो। (श्रीअरविन्द)

२४. नवीन जन्म तुम्हारे हृदय में प्रकट हो, शान्ति और आनन्द के साथ वह अपनी ज्योति फैलाये तथा तुम्हारी सत्ता के सभी भागों को—मन, दृष्टि, संकल्प, हृदय, प्राण और शरीर, सभी को अपने अन्दर ले ले। (श्रीअरविन्द)

२५. मातः दुर्गे! हम युग-युग से मानव-शरीर में अवतीर्ण होकर जन्म-जन्मान्तर तुम्हारे ही कार्य सम्पन्न कर तुम्हारे आनन्दधाम में लौट जाते हैं। इस बार भी जन्म लेकर तुम्हारे ही कार्यव्रती हैं हम; सुनो मातः, भारतवर्ष में प्रकट होओ, हमारी सहायक बनो। (श्रीअरविन्द)

२६. मातः दुर्गे! हम तुम्हारी सन्तान हैं, तुम्हारे प्रसाद से, तुम्हारे प्रभाव से महान् कार्य के, महान् भाव के उपयुक्त हों। मातः, क्षुद्रता का विनाश करो, स्वार्थ का नाश करो, भय का विनाश करो। (श्रीअरविन्द)

२७. यदि कोई विश्वास और निर्भरता के साथ अपने-आपको भगवान् के हाथों में सौंप दे तो भगवान् सब कुछ कर सकते हैं—हृदय और स्वभाव को शुद्ध, आन्तरिक चेतना को जाग्रत् और परदों को दूर हटा सकते हैं।

२८. तुम जो भी काम करो, जितनी पूर्णता से कर सकते हो करो। यही मनुष्य के अन्दर भगवान् की सबसे अच्छी सेवा है।

२९. तू है इसलिए मनुष्य अपने दुर्भाग्य के आगे नहीं झुकते, बल्कि सुख की माँग करते हैं और नियति से भिड़ जाते हैं। (श्रीअरविन्द)

३०. अगर तुम पृथ्वी पर शान्ति चाहते हो तो पहले अपने हृदय में शान्ति स्थापित करो।

३१. बच्चे के सरल विश्वास में बड़ी शक्ति होती है।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

पहला निर्णायक क़दम उठा लो

शरीर का अर्पण आसान है, प्राण का अर्पण आसान है, लेकिन मन का अर्पण सबसे कठिन है। तुम प्रार्थना करो, "हे प्रभो, आपको छोड़ और कहीं से कोई विचार मेरे अन्दर न आये। भगवन्, मैं अपना मन आपको समर्पित करता हूँ।" जब तक तुम्हारे अन्दर कामनाएँ हैं, भुलक्कड़पन है, सतत स्मरण नहीं है, जब तक कि तुम अपने अन्दर अवतरण का आह्वान न कर सको, तब तक तुम्हारा मानसिक समर्पण पूरा न होने पायेगा। मानसिक समर्पण अवतरण से ही पूरा होता है। अवतरण इस बात का चिह्न है कि उन्होंने तुम्हारा समर्पण स्वीकार कर लिया है, जिसे संस्कृत में शक्तिपात कहते हैं। यह बहुत सच्चाई और निष्कपटता से ही आता है और यह आता है सबसे ज़्यादा निद्रा से पहले के ध्यान में। वह सबसे अच्छा ध्यान होता है जब तुम अपने-आपको पूरी तरह समर्पित कर देते हो। तो मन का समर्पण होगा, सोचने की प्रक्रिया को बिलकुल बन्द कर देना, स्मृति की सभी रचनाओं को दूर कर देना। स्मृति संस्कार बनाती है—तुम्हें कोई चीज़ पसन्द आती है, तुम उसे ख़रीदना चाहते हो। इस चीज़ को निकाल देना चाहिये। तुम कहो, "मैं हर क्षण तुम्हारी चेतना में रहना चाहता हूँ। मैं वर्तमान के साथ भूत और भविष्य का गठ-बन्धन नहीं चाहता। हर चीज़ का सिर्फ़ तुम्हारे साथ ही सम्बन्ध हो ताकि भविष्य केवल तुम्हारे हाथ में हो।"

इन समर्पणों के साथ सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम आता है। मान लो कि तुम सात बजे समर्पण करते हो। अब तुम सात बज कर पाँच मिनट पर क्या करोगे? क्या तुम अपने पुराने ढर्रे पर लौट जाओगे? मैं समर्पण कर चुका, अब चलो मैं ताश खेल लूँ, ज़रा बक-बक कर लूँ या दूरदर्शन देख लूँ। अगर तुम सचमुच प्रगति करना चाहो तो तुम्हें सतत समर्पण करना चाहिये।... अपनी ओर से तुम्हें कहना चाहिये, "हे भगवन्, आपके आदेश के बिना मैं कुछ नहीं कर सकता, आपका आदेश पाने के लिए मैं एकाग्र रहूँगा, मैं अपना आन्तरिक समर्पण जारी रखूँगा।" और तुम इसका

परिणाम देख कर आश्चर्य में पड़ जाओगे।... यदि सचमुच हमारी समर्पण की वृत्ति है तो भगवान् हमारे पास आते हैं। जब हम खिड़की खोलते हैं तो धूप हमारे पास आती है; हम उसके पास नहीं जाते। समर्पण हमारे अन्दर की खिड़की खोल देता है और वे हमारे पास आ जाते हैं—हमने अहंकार के प्रति ग़लत समर्पण द्वारा उन्हें बाहर रोक दिया है। दूसरी ओर अहंकार हमें तब तक नहीं छोड़ता जब तक वे न आ जायें। हमें हमेशा याद रखना चाहिये कि अहंकार पतला हो सकता है, कमज़ोर हो सकता है, लेकिन वह हमें तब तक न छोड़ेगा जब तक भगवान् न आ जायें। अहंकार के जाने और भगवान् के आने के बीच में कोई मध्यकाल नहीं होता। भगवान् आते हैं और अहंकार जाता है। इसके बीच लव-निमेष का भी अन्तर नहीं होता। वास्तव में समर्पण भगवान् के प्रति खुलने और अहंकार को हटाने में बहुत बड़ा क़दम है। तुम समर्पण करो और उसे बनाये रखने पर आग्रह करो। तुम जो भी काम करते हो, अपने कार्यालय में बैठ कर भगवान् से कहो, "मैं अपना यह कार्य आपको अर्पित करता हूँ।" तुम्हें अपनी बात पर आग्रह करना चाहिये और फिर भगवान् से आग्रह करो कि वे भी अपनी बात पर आग्रह करें। तब तुम देखोगे कि चीज़ें कैसे बदलती हैं। तुमको पत्र खोलने से पहले ही पता लग जायेगा कि उसमें क्या है, इतना ही नहीं, यह भी कि उसका क्या उत्तर दिया जाये। वास्तव में तुम्हारे लिए सब कुछ बदल जायेगा।

समर्पण का एक और पक्ष है जिसे हमें समझ लेना चाहिये। मानव व्यक्तित्व के अनेक भाग होते हैं। सभी भाग एक साथ समर्पण नहीं करते। एक भाग समर्पण कर सकता है और दूसरा नहीं। लेकिन हम यह न समझ बैठें कि हमारा समर्पण पीछे हट गया है, यह एक और भाग है जो आगे आ गया है और इसे भी अर्पित कर दो। वह एक विचार के रूप में आ सकता है, प्रेम के रूप में या दुःख के रूप में भी आ सकता है; अगर तुमने सचमुच समर्पण कर दिया है तो कोई हर्ष, विषाद नहीं हो सकता। विक्षुब्ध मत होओ, अर्पण करते जाओ, सब कुछ अर्पित कर दो। अगर पहला निर्णायक क़दम उठा लिया जाये तो बाक़ी सब चलते जायेंगे। शुरू का क़दम उठाना ही मुश्किल होता है।

(क्रमशः)

—नवजातजी

श्रीमाँ के साथ रवीन्द्रजी का पत्र-व्यवहार

(रवीन्द्रजी ने गुरुकुल काँगड़ी से शिक्षा समाप्त करके श्रीअरविन्द के बड़े गुरुकुल में सन् १९३८ में २१ वर्ष की अवस्था में प्रवेश पाया था। २००१ में अपनी मृत्युपर्यन्त वे यहीं के अन्तेवासी रहे।)

प.ले. का अर्थ है, पत्र-लेखक—सं.

माताजी,

चारों ओर कार्यकर्ताओं और कार्य में ह्रास होता जा रहा है और माँगें बढ़ती ही जा रही हैं।

हाँ, अव्यवस्था व्यापक है, एकमात्र सहायता है श्रद्धा।

आशीर्वाद।

६ अगस्त १९६३

प.ले. को कुछ शारीरिक कष्ट था। माताजी ने उसे डॉक्टर के पास जाने की सलाह दी तो उसने लिखा कि मैं चाहता हूँ कि मेरा शरीर औरों की सहायता न ले, आपकी सहायता पर निर्भर रहना सीखे। मेरे अन्दर भय भी है और श्रद्धा की कमी भी, फिर भी मैं आशा करता हूँ कि आप इसके लिए जो ज़रूरी है वह कर सकती हैं। अतः किसी और के पास जाना ज़रूरी है क्या?

(डॉक्टर के यहाँ जाना) इससे शरीर को एक विश्वास प्राप्त होता है और इस रूप में वह सहायक है। लेकिन मैं इसे तुम्हारे फ़ैसले पर छोड़ती हूँ।

आशीर्वाद।

२६ अगस्त १९६३

कुछ पूंजी लगाने वाले आश्रम की एक इमारत पर ख़र्च कम करने की तरक़ीब सुझा रहे थे। प.ले. ने उनकी बातें माताजी को लिख भेजीं।

इमारत के मामले में तुम जितना ख़र्च करोगे उतना पाओगे। वे अपने-आपको बहुत चालाक समझते हैं, लेकिन अगर वे कम ख़र्च करेंगे तो उनका मकान कम दिन चलेगा और हो सकता है कि प्रकृति के आघातों को सहने के लिए काफ़ी मज़बूत भी न हो। अप्रशिक्षित आँख के लिए दोनों एक जैसे होंगे लेकिन उनमें ठोसपन और प्रतिरोध-शक्ति में बहुत अन्तर होगा। यह सब कहने के बाद मेरा निष्कर्ष है, "वे जैसा चाहें बनायें।"

आख़िर हर एक को अपना पाठ सीखना होता है।

फिर भी मैं चेतावनी के दो शब्द जोड़ दूँ। बुरी तरह से बने मकान की मरम्मत नहीं की जा सकती, क्योंकि अधिकतर नींव कमज़ोर होती है।

आशीर्वाद।

१८ नवम्बर १९६३

प.ले. ने एक आदमी के कई चमत्कारों की बात लिखी और अन्त में लिखा, उसका कहना है कि ये सब चमत्कार आपकी कृपा से हैं। मुझे नहीं लगता कि इस तरह चमत्कारों के पीछे दौड़ना ख़तरे से ख़ाली है। यह तो पुरानी बातों को ही नये-नये रूप में ला रखना है।

"हम बहुधा आपके चमत्कार देखा करते हैं; लेकिन वे कभी अपना विज्ञापन देने या परचे बाँटने नहीं आते।"

मुझे इस तरह के दिखावटी चमत्कार पसन्द नहीं हैं। अधिकतर उनका दयनीय अन्त होता है।

शक्ति के दबाव में आकर पहली प्रतिक्रिया होती है, अहंकार का ख़तरनाक रूप से फूलना।

इन सब चीज़ों के सामने बस एक ही वृत्ति अपनानी चाहिये—

अपना अच्छे-से-अच्छा करो और परिणाम प्रभु के हाथों में छोड़ दो।

आशीर्वाद।

१९६३

माताजी,

२६ वर्ष प्रयास करने के बाद भी मैं देखता हूँ कि मैं निष्ठावान्

होने से बहुत दूर हूँ। छोटी-छोटी बातें मुझे असन्तुलित कर देती हैं। मुझे शंका है कि आप कभी मुझे बदलने में सफल हो भी सकेंगी।

मुझे विश्वास है कि मैं एक दिन सफल होऊँगी।

माताजी,

ऐसा लगता है कि भीतर से तो चीज़ें सुधर रही हैं पर बाहर से तो मालूम होता है कि विघटन हमारे द्वार पर खड़ा है। आख़िर हम कहाँ हैं?

एक सुन्दर उपलब्धि के सामने।

प्रेम और आशीर्वाद।

१६ मार्च १९६४

माताजी,

कभी-कभी जब मुझे किसी बीमार से सहानुभूति होती है तो मेरा शरीर भी उसी के लक्षण दिखाने लगता है। आयुर्वेद का विद्यार्थी होने के नाते मेरी कल्पना भी सक्रिय हो उठती है। मेरे पूरे प्रयास के बावजूद यह स्थिति जाती नहीं, लेकिन आपकी ओर से एक-दो कठोर शब्द मिल जायें तो मैं बिलकुल ठीक हो जाता हूँ। इसलिए मुझे बार-बार आपको तंग करना पड़ता है। इसीलिए मैं लिखने बैठा हूँ। 'क' को मधुमेह है और वह मेरे शरीर में अपने दोस्त पा रहा है। काश! मैं आपके रक्षण से बाहर न जा पाता।

सबसे अच्छी तरक़ीब है, अव्यवस्था और विक्षोभ के स्पन्दनों को हटा कर उनके स्थान पर 'भागवत उपस्थिति', 'सत्य' और 'सामञ्जस्य' को प्रतिष्ठित करो।

आशीर्वाद।

२५ मार्च १९६४

माताजी,

हमारे भोजनालय में काम करने वाले तीन-चार व्यक्तियों में घनिष्ठ

शत्रुता हो गयी है। मैं उनकी शिकायतें सुनते-सुनते थक जाता हूँ। कल तो इसने बहुत ही गम्भीर रूप धारण कर लिया था। मैं बहुत कोशिश करने पर भी कोई कारण नहीं खोज पाया। कृपया सहायता कीजिये।

यह गरमी के कारण है! मेरी सलाह है 'ठण्डे पानी का फव्वारा'!

आशीर्वाद।

२७ मई १९६४

२७ मई १९६४ को पं. जवाहरलाल नेहरू का देहावसान हो गया। इस पर माताजी ने सन्देश दिया, "नेहरू अपना शरीर छोड़ गये हैं, लेकिन उनकी आत्मा भारत की आत्मा के साथ एक है जो शाश्वत काल तक बनी रहेगी।" प.ले. ने माताजी से सलाह माँगी कि क्या वह नेहरूजी के बारे में पुरोधा में सम्पादकीय टिप्पणी लिख सकता है, अगर हाँ, तो वह क्या कहे?

यह ठीक है। इसके सिवा कोई और सुझाव नहीं कि वर्तमान दुःख और अँधेरे के बावजूद भारत का भविष्य उज्ज्वल है।

माताजी,

उस दिन मैंने स्वप्न देखा कि हमारे भोजनालय में बहुत-से छोटे-बड़े सूअर पाले गये हैं, उन्हें मारा जायेगा। मैं वहाँ से भाग जाना चाहता था, फिर मैंने सोचा, "अगर माताजी यह चाहती हैं तो यही सही।" इसका मेरे ऊपर बहुत असर पड़ा।

यह स्वप्न तुम्हारे पुराने संस्कारों का परिणाम है जो अभी तक तुम्हारी अवचेतना में जीवित हैं। सूअरों को मारने का कोई इरादा नहीं है जब तक कि वे लोभ और भोजन-लोलुपता के प्रतीक न हों।

आशीर्वाद।

१० जून १९६४

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ३३०-४०

कली खिल उठी

कली कब से खिलने का इन्तज़ार कर रही थी। वह अपने अन्दर कैसे-कैसे सपने सँजोये बैठी थी। उसका ख़याल था कि फूल बनते ही दुनिया-भर के भौंरे उस पर मँडराने लगेंगे। उसके पास मधु, मकरन्द, पराग और न जाने किस-किस चीज़ के भण्डार होंगे जिन्हें वह मुक्त हस्त से बाँटती चलेगी। कोई उसका सौन्दर्य निहारने आयेगा, कोई मधुपान करने। कोई उसके रंग पर न्योछावर होगा तो कोई उसके रूप पर अपने-आपको लुटा देगा।

वह हसरत-भरी आँखों से अपने आस-पास के फूलों को देखती और मन ही मन कहती : "आज तुम इतरा लो जितना चाहो, पर याद रखो कल तो मेरा है।" वह इठलाते हुए, हवा के झोंकों पर तैरते हुए फूलों को देखती और कलेजा मसोस कर रह जाती। आख़िर हार कर उसके मुँह से निकला :

कब कौ टेरत दीन-रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक, जग-बाई।।

कली की टेर श्याम न सही, श्याम के एक सखा भौंरे के कान में पड़ी और वह उसकी ओर चल पड़ा। उसे कली के चारों ओर मँडराते देख कुछ फूलों में ईर्ष्या जागी और एक बोल उठा :

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौं बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।।

वह एकमात्र भौंरा जो उसकी ओर मुड़ा था वह भी सिर झुका कर लजाता हुआ किसी और फूल की टोह में निकल गया। आह! इससे तो वह न आया होता तो ज़्यादा अच्छा रहता।

लेकिन अभी कली ने आशा न छोड़ी थी। उसने दोपाये मनुष्यों को बड़े प्रेम के साथ वाटिका की सेवा करते देखा था। उसने फूलों की प्रदर्शनियों और फूलों की सैर की कहानियाँ सुनी थीं। उसने सुना था :

हुआ चमन में हुजूमे बुलबुल किया जो गुल ने जमाल पैदा।
कमी नहीं क़द्रदां की अकबर करे तो कोई कमाल पैदा।।

उसे विश्वास था कि उसके अन्दर अनुपम सौन्दर्य छिपा है और उसके खिलते ही मनुष्य बौरा जायेंगे। लेकिन बेचारी कली क्या जानती थी कि

मनुष्य जो करता है व्यापार की दृष्टि से करता है। सौन्दर्य के लिए सौन्दर्य को अपनाना उसने सीखा ही नहीं।

माली सींचता है, पौधों की टहल करता है तो बदले में कुछ पाने के लिए। सुन्दरियाँ फूलों पर नज़र रखती हैं तो अपने सौन्दर्य को निखारने के लिए, बड़े बाबू उन पर लट्टू होते हैं तो प्रदर्शनी में पहला ईनाम पाने के लिए। लेकिन जहाँ सौन्दर्य पर ज़रा धब्बा आया, जहाँ उसकी मसृण त्वचा पर ज़रा-सी शिकन आयी कि बस उसका स्थान घूरे पर। जब तक फूल औरों की शोभा बढ़ाता रहे तब तक उसके चाहने वालों की कमी नहीं, लेकिन उनका मन अघाते देर नहीं लगती और तब उसको पूछने वाला भी कोई नहीं रहता।

कली का दिल भर आया। इस सब जानकारी के लिए वह अभी बहुत छोटी थी। वह सोचने लगी, तब फिर इस स्वार्थ-भरे संसार में खिलने से लाभ ही क्या? मैं क्यों अपने अन्दर हसरतें जगा कर उनका ख़ून करूँ! मेरा असली स्थान अगर घूरे पर है तो अभी से ही क्यों न उस ओर मुँह कर लूँ? बहुतेरे झंझटों से बच जाऊँगी। कली मुरझाने लगी।

उधर से कोई छोटा-सा बालक गुज़र रहा था। शायद उसने अभी-अभी फूलों को पहचानना, उनकी क़द्र करना सीखा था। उसके मुँह से निकला:

फूल तो कुछ दिन बहार अपनी दिखा कर चल दिये।
हसरत उन गुंचों पे है जो बिन खिले मुरझा गये।।

उसकी आवाज़ ने मानों कली में जीवन की नयी इच्छा जगा दी। बालक ने आकर कली को सहलाया। दोनों में अन्दर-ही-अन्दर न जाने क्या बातचीत हुई। लड़के ने धीरे-से, वाणी में रस घोलते हुए कहा: "कली, सौभाग्य है तुम्हारा, तुम लोगों के विलास की सामग्री भले न बन पाओ, पर भगवान् के चरणों में तुम्हारे लिए स्थान अवश्य होगा। तुम्हारा रूप-रस भले मोहक न हो, तुम्हारा हृदय सरल है, अपने-आपको निःशेष रूप में देना जानता है। निराश न होओ, अपने-आपको उन चरणों में अर्पित कर दो। तुम्हारे जन्म-जन्मान्तर सुधर जायेंगे।"

और कली खिल उठी। आज उसके लिए नव प्रभात था।

'पुरोधा', जून २००६ से

स्व. श्री रवीन्द्रजी

उसकी आवाज़ ही सुन पाता हूँ...

हम अभी नये-नये ही इस मुहल्ले में आये थे। पड़ोसी रामधनजी का लड़का सतीश मुझसे दो श्रेणी नीचे पढ़ता था सो सबसे पहले मैंने उससे मित्रता बनायी। उसने बातों ही बातों में बताया कि सवेरे वह नित्यप्रति अपनी माता के साथ देवीजी के मन्दिर में जाता है। यह बात तो मेरे लिए आकर्षण का विषय न थी पर जब उसने फूलवाली की बात बतायी तो मेरे मन में शरारत घूम गयी। घर में छोटे बहन-भाइयों की तो आफ़त आयी ही रहती थी पर स्कूल में अध्यापकों की भी नाक में दम था मेरे उत्पातों के कारण। पर मैं भी क्या करता! मैं बहुत चाहता कि मैं भी भले लड़कों की तरह आराम से बैठा करूँ पर हाथों को रोकता तो पैर चल पड़ते, पैरों को रोकता तो मुँह आप-ही आप खुल जाता, किसी तरह मुँह भी सी लेता तो टेढ़ी-मेढ़ी कुहनियाँ अपने-आप बिदक पड़तीं। भगवान् जाने मेरे शरीर में ऐसी क्या बिजली की धारा दौड़ती रहती थी कि कोई मुझे बिच्छू कहता, कोई नचार कहता, कोई कहता, पता नहीं इस लड़के की हड्डियों में क्या भरा है जो एक मिनट चैन से नहीं बैठ सकता। और मेरी माँ तो सदा यही कहती—प्रसाद चढ़ाऊँगी दस रुपये का अगर यह दुष्ट कहीं सीधा हो जाये। मैं चाहता कि किसी तरह हम सीधे हो जायें और वे दस रुपये हम ही भेंट चढ़वा लें, पर कहाँ जी!

'फूलवाली' की कहानी कह रहा था और शुरू कर दी अपनी ही रामकहानी। हाँ, तो मैंने सतीश को कह दिया कि मैं भी तेरे साथ चलूँगा। रात को मैंने माँ से कहा कि मुझे जल्दी उठा देना। उन्होंने पूछा—क्यों? मैंने बहुत गम्भीरता से कहा—सतीश रोज़ देवीजी के मन्दिर में जाता है, मैं भी उसके साथ जाया करूँगा। माँ बोलीं तो कुछ नहीं पर प्रसन्न नज़र आयीं। शायद उन्हें यह आशा बँधी कि चलो नये मुहल्ले में आकर लड़के का उद्धार तो होगा या शायद उन्हें देवीजी की कृपा ही नज़र आयी। ख़ैर, मैं सवेरे उठ कर जल्दी-जल्दी तैयार हुआ। माँ ने प्रसन्न भाव से मेरी सहायता की और जाते समय दरवाज़े के पास आकर कहा—प्रसाद मेरे लिए भी ले आना। मैं बड़े चक्कर में पड़ गया; मैं कोई देवीजी के दर्शन के लिए थोड़े ही जा रहा था, मेरा उद्देश्य तो फूलवाली को तंग करना था।

हमसे पहले कुछ और लोग भी फूल ले रहे थे। मैंने देखा कि फूलवाली बहुत बूढ़ी और दुबली-सी है। अगर मैं उसके बहुत सारे फूल उठा कर भाग जाऊँ तो वह मुझे पकड़ भी न सकेगी। जब बड़े-बड़े लोग फूल लेकर मौन भाव में चले गये तो मैंने सतीश को आगे धकेला। फूलवाली ने हँसते हुए अपनी छोटी डलिया पर से गीला कपड़ा हटाते हुए कहा—आ गया बच्चा! और उसने दो सुन्दर गुलाब के अधखिले फूल उसके लिए निकाले। मेरे पास यह स्वर्ण अवसर था पर न जाने किसने मेरे हाथों को जकड़ लिया था। मैं फूलवाली की ओर देखता रहा। मैंने जीवन में पहली बार अपने-आपको ऐसी अवस्था में पाया। सतीश ने फूल लिये और मुझसे फूल लेने को कहा। मैं वहीं खड़ा रहा। इस पर फूलवाली ने कहा—क्यों बच्चा, कौन-सा फूल चाहिये तुझे? मैं तपाक से बोल पड़ा—मुझे तो सारे चाहियें। फूलवाली मुस्कुरायी और बोली—ले लो बेटा, ये सब उन्हीं के तो हैं पर तुम्हारे छोटे-छोटे हाथों में इतने फूल कहाँ आयेंगे? ये तो पूजा के फूल हैं बेटा। देवीजी दो फूल से भी उतनी ही प्रसन्न होती हैं जितनी ढेर सारे फूलों से। यह कहते हुए उसने मेरी अञ्जलि फूलों से भर दी। मैं आया था कुछ मज़ा लेने और यहाँ लेने के देने पड़ गये। मन्दिर में जाना पड़ा और वहाँ भी चुपचाप ही फूल चढ़ा देने पड़े।

घर आकर मुझे अपने पर बड़ी खीज आयी कि क्या एक फूलवाली ने मेरी बुद्धि कुण्ठित कर दी। मैं क्यों उसके सामने ऐसा बुद्धू बन गया! अच्छा कल सही। अब मैं रोज़ नयी-नयी तरक़ीब सोच कर जाता पर न जाने क्यों फूलवाली को देखते ही सब भूल जाता और जी यह करने लगा कि स्कूल न जाकर फूलवाली के पास ही आकर बैठ जाया करूँ। अब मैं सचमुच फूलवाली को तंग करने के उद्देश्य से नहीं बल्कि उसके स्नेह-भरे दो बोल सुनने को उसके पास जाया करता। एक दिन छोटी-सी लतिका ने पूछा—फूलवाली, तुम देवीजी को फूल चढ़ाने क्यों नहीं जातीं? तुम्हारे पास तो ढेर सारे फूल हैं! फूलवाली ने लतिका की ठुड्डी को हाथ लगाते हुए कहा—मेरी रानी बिटिया, तुम्हारे नन्हें-नन्हें हाथों से फूल पाकर देवीजी बहुत ख़ुश होती हैं। लतिका सगर्व मुस्कुराती अपने फूलों को सम्भालती मन्दिर में चली गयी।

सत्यन् आया, उसने भी कहा—फूलवाली, फूलवाली, तुम देवीजी पर

एक भी फूल नहीं चढ़ातीं, देवीजी तुमसे अप्रसन्न हो जायेंगी। "इतने फूल तो चढ़ाती हूँ बेटा!" "कहाँ, यह तो हमलोग चढ़ाते हैं, मैं क्या रोज़ देखता नहीं हूँ जब तुम्हारी छाबड़ी ख़ाली हो जाती है, तुम यहीं से नमस्कार करके चली जाती हो।" "मेरे राजा बेटे, ये सब फूल उन्हीं के हैं। मेरे अकेली के हाथों से फूल पाकर वे इतनी प्रसन्न न होंगी जितनी सैकड़ों हाथों से अपना शृंगार करा के प्रसन्न होती हैं।"

मेरा किशोर मन फूलवाली की सरल पर तथ्यपूर्ण बातें सुनता और भीतर ही भीतर कुछ विचारता।

एक दिन तो केशव ने जब पूछा कि फूलवाली तुम खाती कहाँ से हो? तुम तो सबसे पैसे भी नहीं लेतीं; जो अपनी मरज़ी से दे जाता है दे जाये। वह तो बहुत कम होता है। फूलवाली ने उसी सरलता से कहा—बेटा, फूलों से रोटी थोड़े ही खायी जाती है, फूल तो माँ की पूजा के लिए होते हैं। जिन्हें तुम थोड़े-से पैसे कहते हो वे तो माँ का प्रसाद हैं। माँ का प्रसाद तो कण भर भी होता है तो बहुत तृप्ति देता है। बेटा, प्रसाद पाने वाला व्यक्ति कभी भूखा नहीं रहता। भगवान् को कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई भोग लगाता ही है और भगवान् उसमें से अपने लोगों के लिए प्रसाद अवश्य छोड़ते हैं यह उनका नियम है। बेटा, मेरा तो यही जी करता है कि मैं इसी तरह जन्म-जन्म तक फूलवाली ही बनी रहूँ। भीतर की ओर झाँकते हुए उसने कहा—देखो, माँ भी तो फूलवाली हैं। मेरी डलिया ख़ाली होती जाती है, माँ की भरती जाती है।

न जाने फूलवाली उस दिन कैसे भावावेश में थी जो हम बच्चों की समझ से परे की बातें कहे जा रही थी, पर शायद इसे बड़े लोग समझ भी नहीं सकते थे।

अगले दिन प्रातःकाल जब हम फूल लेने पहुँचे तो देखा फूलों की डलिया सजी रखी है और फूलवाली उसके पास सोयी पड़ी है। हमने दूर से ही पुकारा—फूलवाली, फूलवाली। विक्रम ने उसे जगाना चाहा पर पास खड़े दो-तीन आदमियों ने विक्रम को अलग कर दिया। हम भौचक्के-से खड़े रह गये, आख़िर फूलवाली फूल क्यों नहीं देती, यह सो कैसे रही है! बाद में पता चला कि उस दिन वह हमेशा की नींद सो गयी थी।

आज इस घटना को कई वर्ष बीत गये पर जब कभी किसी देवालय

में जाता हूँ और बाहर फूल रखे देखता हूँ तो ख़रीदना चाहते हुए भी ख़रीद नहीं पाता। फूलवाली कह जाती है—फूल रोटी के लिए नहीं होते बेटा, फूल पूजा के लिए होते हैं। फूलवाली की आवाज़ ही सुन पाता हूँ, उसे कहीं देख नहीं पाता।

'अग्निशिखा', सितम्बर २०१७ से —स्व. ज्ञानवती

फूल

फूल
दिवस-भर खिल कर
मुरझा गया!
किन्तु उसका रूप
नयनों में गया बस,
और
उसकी गन्ध दिल को गयी हर।
जानता हूँ
रूप चिरस्थायी नहीं है और
यह जो गन्ध है,
आयी-गयी है।
किन्तु
उसकी स्मृति,
मादक है, मदिर है, मधुर है
और हृदय में
बस गयी है कुछ इस तरह
कि
एक युग के बाद भी
जब झाँकता हूँ
हृदय-गुहा में
तो यूँ लगता है
जैसे नित नयी है। —अज्ञात

सामञ्जस्य की लहर जुड़ गयी

(फूलों के विशेषांक के लिए प्रस्तुत है यह सरल, सुन्दर, सारगर्भित छोटी-सी कहानी जिसे पाठकों ने चार वर्ष पहले भी अग्निशिखा में सम्भवतः पढ़ा हो—सं.)

आँधी आयी और अपने साथ महाविनाश को ले आयी, भयभीत नगरवासियों का दिल दहला गयी। अपने-आपको जगत् में सर्वश्रेष्ठ मानने वाला मानव प्रकृति की तनी हुई भृकुटि के सामने सहम कर अपने घर में मूषक की भाँति दुबक कर बैठ गया। शक्तिशाली मानव की यह दुरवस्था देख आँधी अपने विनाश-कर्म पर फूली न समायी, मन-ही-मन सोचने लगी—"अरे! दुनिया में अपने-आपको सबसे शक्तिशाली मानने वाला मनुष्य आज मेरी शक्ति के सामने असहाय बन गया। अब मैं ही इस धरती पर सर्वश्रेष्ठ हूँ। चारों तरफ़ मेरी प्रचण्डता की धाक जम गयी है। अरे, वह दिन सम्भवतः दूर नहीं जब देवताओं में मेरी गणना इन्द्र के समकक्ष होने लगे।" अपने ही गुणगान गाती हुई उस आँधी ने बवण्डर का ऐसा रूप ले लिया कि सभी प्राणी त्राहि-त्राहि कर उठे।

कुछ ही समय पहले जिस स्थान की तुलना नन्दन-कानन से की जा सकती थी, आँधी के लगातार थपेड़ों से धूलि-धूसरित हो क्षण भर में वह अपना सारा सौन्दर्य खो बैठा, जहाँ मन्द समीर के झोंके विभिन्न पुष्पों को दुलार रहे थे, अब वे सदा के लिए धरती की गोद में समा गये थे। पल भर में दृश्य एकदम बदल गया। जहाँ जीवन धड़क रहा था वहाँ अचानक मृत्यु ने डेरा डाल दिया। फूत्कार करती हुई आँधी सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट करती आगे ही आगे बढ़ती जा रही थी कि अचानक पीछे से उसे मन्द पवन के झोंके का-सा स्पर्श प्राप्त हुआ, पलट कर जो देखा तो पाया कि सचमुच ठण्डी हवा का एक झोंका धरती पर बिछ गयी क्यारियों के बीच दुबक कर जा बैठा था। अपनी शक्ति पर फिर से गर्व किया आँधी ने, "वाह! मेरे सामने सभी सहम कर छिपे जा रहे हैं।" फिर बोली, "अरे समीर, छिप क्यों रहा है? तू तो मेरी ही जाति का है, फ़र्क बस इतना है कि तू शक्तिहीन है और मैं शक्तिशाली। क्या मेरे जैसी सामर्थ्य और शक्ति पाना चाहता है तू?

मेरे साथ विनाश-कर्म में लग जा और मुझ जैसा बन जायेगा।"

समीर आँखें नीची किये मुस्कुरा भर दिया।

उसे चुप्पी साधे देख आँधी उसी जोश के साथ फिर से बोल उठी, "बोलता क्यों नहीं? क्या मेरे बली होने का तुझे विश्वास नहीं? अरे, जैसे ही मेरे आने के आभास की तरंगें धरती पर फैलने लगती हैं कि चराचर व्याकुल और अस्थिर हो उठते हैं। देख नहीं रहा, मेरी शक्ति के सामने कोई नहीं ठहर पा रहा, सब मुझसे बचने के लिए इधर-उधर आश्रय ढूँढ़ रहे हैं, पशु-पक्षी भी भयभीत अपने घोंसलों, बिलों और माँदों की शरण ले रहे हैं। स्थल तो क्या, अपने-आपको जल के स्वामी मानने वाले बड़े-बड़े जहाज़ भी मेरी महानता के सामने तिनके की भाँति इधर-उधर डोलने लगते हैं, और समुद्र की लहरों के साथ तो मैं ऐसे-ऐसे खेल रचाती हूँ कि कभी तो उन्हें पहाड़ की ऊँचाई तक ले जाकर नीचे पटक देती हूँ और कभी उन्हें बवण्डरों में उलझा कर रख देती हूँ। अरे, देख नहीं रहा, धरती-आकाश सब मेरे आगे नतमस्तक खड़े हैं, जहाँ से गुज़र जाती हूँ बड़े-बड़े पेड़ धराशायी हो मुझे शत-शत प्रणाम करते हैं, और छोटे पौधों की तो बात ही क्या, उनका तो नामोनिशान तक मिटा देती हूँ। बोल, क्या अब भी मेरे जैसी शक्ति और बल का भागीदार नहीं बनना चाहता? समान जाति का होने के कारण तू जल्दी ही विनाश-लीला सीख जायेगा, तू कहे तो पल भर में फूँक मार कर तेरे अन्दर वह अदम्य शक्ति और ऊर्जा सञ्चारित कर दूँ कि मन्द समीर जैसे तुच्छ और अकिञ्चन नाम से जाना जाने वाला तू प्रचण्ड प्रभञ्जन का विशेष नाम पा ले!"

समीर सहमा-सा चुपचाप क्यारियों में दुबका रहा।

आँधी उसकी मूढ़ता पर हँस कर बोल उठी, "अरे मूर्ख! तेरे सामने देवता के समान मैं वरदान देने खड़ी हूँ और तू उसे ठुकरा रहा है। सचमुच, प्रकृति से दुर्बल जीव में भगवान् भी शक्ति का बीज नहीं बो सकते। जा, अपनी दुर्बलता के ही कीचड़ में फँसा रह कर मेरी शक्ति और विनाश का नृत्य देख।" इतना कह कर आँधी धूल उड़ाती हुई अपने रास्ते हो ली।

समीर ने ईश्वर को कोटि-कोटि धन्यवाद दिया। आँधी के हट जाने से क्षण भर में वातावरण फिर सुरभित हो उठा। मन्द पवन के बहते ही चराचर भयमुक्त हो गये। नदियों ने फिर से अपना कलकल नाद आरम्भ

कर दिया और समुद्र ने भी अपनी गम्भीरता शीघ्र ही पा ली, उसकी लहरें तट के साथ प्रेमालाप में निमग्न हो गयीं।

आँधी तो आगे बढ़ गयी थी, लेकिन समीर की मन्द मुस्कान और चुप्पी ने उसके हृदय में सन्देह का बीज बो दिया था। एक ही बात उसे रह-रह कर खटक रही थी कि समीर कमज़ोर क्यों बना रहना चाहता है, मेरे जैसी शक्ति क्यों नहीं पाना चाहता? दूर खड़े होकर उसने एक दृष्टि मन्द समीर के प्रदेश में डाली और आश्चर्यचकित रह गयी—वहाँ क्षण भर में सामञ्जस्य का सुन्दर वातावरण छा गया था। कोयल कूकने लगी थीं, भौंरे गुनगुन कर फूलों में नयी जान भर रहे थे, चारों तरफ प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी थी। विनाश की कालिमा चीर कर समीर जीवन का सूर्य चमका कर आगे बढ़ गया था!

लज्जा से अभिभूत आँधी पानी-पानी हो गयी। आज उसने निर्माण और विनाश के भेद को गहरे पहचान लिया था।

परिणाम-स्वरूप पृथ्वी पर सामञ्जस्य की एक और लहर दौड़ गयी, अर्थात्, मन्द समीर का एक नया झोंका जुड़ गया।

—वन्दना

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२०० रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

History seldom records
what happens behind the veil.

An animation film
is in the making …

SRI AUROBINDO

A New Dawn

JOIN HANDS TO MAKE THIS FILM
DONATE NOW!

Watch the trailer:
www.anewdawn.in

An offering by Sri Aurobindo Society
for the 150th birth anniversary
of Sri Aurobindo

A Film that brings out the forgotten
chapter of India's awakening.

Date of Publication: **1st October 2021**
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70

समता

निर्विकार शान्ति तथा अचञ्चलता

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

वानस्पतिक नाम: Iberis